आचार्य महाश्रमण

जीवन परिचय

आचार्य महाश्रमण

जीवन परिचय

लेखिका
साध्वी सुमतिप्रभा

प्रकाशक : जैन विश्व भारती
पोस्ट : लाडनूं-३४१३०६
जिला : नागौर (राज.)
फोन नं. : (०१५८१) २२२०८०/२२४६७१
ई-मेल : jainvishvabharati@yahoo.com

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण : फरवरी २०११
द्वितीय संस्करण : मई २०११
तृतीय संस्करण : जनवरी २०१२
चतुर्थ संस्करण : अगस्त २०१२
पंचम संस्करण : अगस्त २०१२
सप्तम संस्करण : जून २०१४

मूल्य : ३०/- (तीस रूपया मात्र)

मुद्रक : पायोराईट प्रिण्ट मीडिया प्रा. लि., उदयपुर

आचार्य महाश्रमण

जीवन परिचय

जिसमें आसमान को छूने का जज्बा होता है, जमीन भी उसकी हो जाती है। वस्तुतः जो व्यक्ति कुछ होने की तमन्ना रखता है, कुछ कर गुजरने का हौसला रखता है, वह एक दिन अवश्य ही अपने भाग्य, बुद्धि और परिश्रम के बलबूते पर जनमानस के मानचित्र पर सफल व्यक्तित्व के रूप में उभर जाता है। विलक्षण कर्त्तृत्व और विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी आचार्य महाश्रमण का जन्म वि.सं. २०१९ वैशाख शुक्ला ९ (१३ मई १९६२) रविवार को सरदारशहर में हुआ।

सरदारशहर राजस्थान का एक प्रमुख क्षेत्र है। गांधी विद्या मंदिर की स्थापना के बाद यह नगर राजस्थान के शैक्षणिक मानचित्र पर उभरकर आ गया। यहां अनेक आकर्षक दर्शनीय स्थल हैं। सरदारशहर तेरापंथ धर्मसंघ के अनेक ऐतिहासिक प्रसंगों का केन्द्र-बिन्दु रहा है। यहां की आबादी एक लाख से भी ज्यादा है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि

सरदारशहर में दूगड़ जाति के परिवार सबसे अधिक हैं। अनेक गांवों से आकर यहां बसने वाले दूगड़ परिवारों में एक परिवार है श्रीमान झूमरमलजी दूगड़ का। उनके पूर्वज 'मेहरी' गांव से आकर बसे थे इसलिए वे मेहरी वाले दूगड़ कहलाने लगे। श्री झूमरमलजी दूगड़ के दस सन्तानें हुईं—सात पुत्र और तीन पुत्रियां। उस समय 'माता' (चेचक) एक असाध्य बीमारी थी। उस लाइलाज बीमारी से ग्रस्त एक पुत्र और एक पुत्री का अल्पवय में ही स्वर्गवास हो गया। श्री झूमरमलजी जोहराट (असम) में रहते थे। उनके हार्डवेयर का व्यवसाय था। वे सहज, सरल, शांत स्वभावी और ईमानदार व्यक्ति थे। पन्द्रह-बीस मिनट तक नमस्कार-महामंत्र का जप करना उनका नित्यक्रम था।

मानव जीवन की मूल्यवत्ता को समझने वाली और उसे निपुणता से जीने वाली श्रीमती नेमादेवी दूगड़ विवेक-सम्पन्न, व्यवहार-कुशल और समझदार महिला थी। वे अपने दायित्व के प्रति पूर्ण जागरूक थी। संघ और संघपति के प्रति उनमें गहरी श्रद्धा थी। उनका भाषा-विवेक गजब का था। जीवन के सन्ध्याकाल में उनको पक्षाघात हो गया। उस समय अनेक लोग उनसे मिलने आते। एक दिन एक भाई ने पूछा—'मांजी! आपको तो बहुत गर्व होता होगा कि मेरा बेटा युवाचार्य है।' उन्होंने तत्काल कहा—'मैं इस बात का गर्व नहीं करती कि मेरा बेटा युवाचार्य है पर मुझे इस बात का गौरव अवश्य है कि मेरा बेटा संघ की सेवा कर रहा है।'

बातें बचपन की

मोहन बचपन से ही प्रतिभा सम्पन्न था। उसमें गहरी सूझबूझ ग्रहणशीलता और प्रशासनिक योग्यता प्रारंभ से ही थी। उसने जैसे ही अपनी उम्र के पांच वर्ष संपन्न किए, राजेन्द्र विद्यालय में प्रवेश किया। लगभग साढ़े पांच वर्ष तक इसी स्कूल में अध्ययन किया। उस समय स्कूल के प्रधानाध्यापक श्री रेंवतमलजी भाटी थे। मोहन ने स्कूल जाने से पहले ही वर्णमाला और कुछ पहाड़े सीख लिए थे। तीसरी, चौथी और पांचवीं कक्षा में वह कक्षा-प्रतिनिधि (मोनिटर) के रूप में निर्वाचित हुआ। तीनों कक्षाओं में गणित और सामान्य विज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की और कक्षा तीसरी और पांचवीं में प्रथम स्थान भी प्राप्त किया। तीसरी कक्षा में खेलकूद/सांस्कृतिक प्रतियोगिता के अंतर्गत उपस्थिति में प्रथम स्थान प्राप्त किया। अनेक धार्मिक व अन्य प्रतियोगिताओं में भी वह प्रायः प्रथम रहता। मोहन अपनी कक्षा के दो-तीन मेधावी छात्रों में एक था। वह अध्ययन में होशियार था तो लड़ाई-झगड़े में भी कम नहीं था। मोहन बचपन में बहुत चंचल था। घर में अनेक बच्चे थे। भाई-भतीजों के साथ लड़ाई-झगड़ा चलता रहता। छुट्टियों के दिनों में तो उसका अधिकांश समय खेलकूद में ही व्यतीत होता। कभी-कभी जब मां परेशान होकर बच्चों को पकड़ने के लिए उठती तब मोहन का छोटा भाई तो घर से बाहर दौड़ जाता और मोहन पकड़ा जाता। मां जैसे ही चपत लगाने लगती, मोहन कहता—'मां! आपके ही हाथों में

लगेगी।' यह सुनते ही मां का हाथ वहीं रुक जाता और वह मार खाने से बच जाता।

मोहन की खेलने में भी अच्छी रुचि थी। कबड्डी, कांच के गोले, सतोलिया, छुपाछुपी आदि उसके प्रिय खेल थे। खेलकूद प्रतियोगिताओं में वह प्रायः भाग लेता था।

मन बदल गया

एक बार श्री झूमरमलजी जोहराट से गोदरेज कम्पनी के आठ-दस ताले लेकर आए। मोहन को वे ताले अच्छे लगे। उसने उनमें से दो ताले चुरा लिए। फिर सोचा, अभी इनका उपयोग करूंगा तो पकड़ा जाऊंगा और मुझे डांट भी पड़ेगी। जब मैं थोड़ा बड़ा हो जाऊंगा तब इन तालों को काम में लूंगा, अपनी ताखी (दीवार में स्थित छोटी अलमारी) के लगाऊंगा। वह तालों को छुपाने के लिए घर के पिछवाड़े में गया, जहां बाखल (मिट्टी युक्त खुली जगह) थी। मोहन ने वहां एक गड्ढा खोदा और उसमें उन दोनों तालों को रखकर ऊपर मिट्टी डाल दी। कुछ देर बाद मां ने देखा कि दो ताले कम कैसे हो गए? वह इधर-उधर ताले खोजने लगी। मां को इस प्रकार खोजते देखकर मोहन का मन बदल गया। उसने सोचा—ताले चुराकर मैंने अच्छा नहीं किया। वह तत्काल मां के पास गया और पूछा—'मां! क्या खोज रही हो?'

मां—'मोहन! अभी तुम्हारे पिताजी कुछ ताले लेकर आए थे। उनमें से दो ताले नहीं मिल रहे हैं। उन्हीं को खोज रही हूं।'

मोहन—'मां! मैं भी खोजता हूं, शायद कहीं मिल जाए।'

यों कहकर मोहन सीधा बाखल में गया। उस गड्ढे की मिट्टी को हटाया और दोनों ताले लाकर मां को दिखाते हुए पूछा—'मां! क्या ये ही ताले हैं?'

मां—'हां मोहन! ये ही हैं।'

इस प्रकार मोहन खोजी सिद्ध हो गया।

सत्य साबित हुई

मोहन के जन्म के दो-तीन साल बाद ही पिता श्री झूमरमलजी

अस्वस्थ हो गए। उनकी किडनी एवं लीवर ठीक Function नहीं कर रहा था। वे मधुमेह रोग से भी आक्रान्त थे। उनके पेट में पानी भर जाता और पैरों में सूजन आ जाती। चिकित्सा के लिए उन्हें रतनगढ़ ले जाया गया। मोहन भी साथ था। उसने एक दिन भोजन करते हुए सहजभाव से कहा—'मां! पिताजी का कितना ही इलाज करा लो, ठीक तो होंगे नहीं।'

मां ने डांटते हुए कहा—'मोहन! ऐसी अशुभ बात क्यों बोलता है?'

आखिर मोहन की बात सत्य साबित हो गई। कुछ दिनों बाद झूमरमलजी का स्वर्गवास हो गया। उस समय मोहन मात्र सात वर्ष का था। इक्यावन वर्ष की अवस्था में ही झूमरमलजी का चले जाना परिवार के लिए एक अपूरणीय क्षति थी किन्तु मां और बड़े भाई ने सुजानमलजी ने बड़े साहस और धैर्य के साथ पिता के रिक्त स्थान को भरने का प्रयास किया।

ऐसे बढ़ा आकर्षण

दूगड़ परिवार का पुरुष-वर्ग साधु-साध्वियों से सम्पर्क बहुत कम रखता था। पर्व दिनों में या जब पूज्यप्रवर का प्रवास सरदारशहर में होता तो कभी-कभी दर्शन करने जाया करता था किन्तु परिवार में सात्त्विकता, शालीनता और संस्कार-संपन्नता बरकरार थी। इस परिवार के महिला-वर्ग में साधु-साध्वियों के प्रति आकर्षण था। व्याख्यान सुनना और दर्शन-उपासना करना उनका प्रायः नियमित क्रम था।

मां व्याख्यान सुनकर घर लौटती तब तक तो शिकायतों का अंबार-सा लग जाता। मां की अनुपस्थिति में घर में शांति रह सके इसलिए वे बच्चों से कहती—'तुम सब मेरे साथ सन्तों के स्थान पर चला करो।' संतों के पास जाने का नाम सुनते ही सब इधर-उधर दौड़ जाते। एक दिन परेशान होकर मां ने कहा—'मोहन! तुम मेरे साथ व्याख्यान सुनने चला करो।' मोहन चपल तो था पर आज्ञाकारी भी था। वह मां के साथ साधुओं के स्थान पर पहुंचा। उन दिनों सरदारशहर में मुनिश्री दुलीचन्दजी 'दिनकर' का प्रवास था। उनके साथ मुनिश्री पानमलजी (गंगाशहर) थे, जो बच्चों को कहानियां सुनाया करते थे। मां ने मोहन को मुनिश्री पानमलजी के पास बिठाया और स्वयं व्याख्यान

सुनने चली गई। मोहन को कहानियों में रस आने लगा। अब वह हमेशा अपनी इच्छा से मां के साथ सन्तों के पास आने लगा। बस, यहीं से मोहन का साधु-साध्वियों के पास जाने का क्रम शुरू हो गया। घर का आकर्षण धीरे-धीरे कम होने लगा और सन्तों के प्रति आकर्षण बढ़ने लगा। अब तक जो आनन्द खेलकूद और लड़ाई-झगड़े में आता था, अब वह सन्तों की उपासना करने और उनसे कुछ सीखने में आने लगा।

तेरापंथ दर्शन मनीषी मंत्री मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) का विक्रम संवत २०३०-३१ का चतुर्मास सरदारशहर में हुआ। मुनिश्री तेरापंथ इतिहास के अच्छे ज्ञाता हैं। उनका तत्त्वज्ञान पर अच्छा अधिकार है। उन्होंने ज्योतिषविद्या में भी दक्षता प्राप्त की है। उनका व्याख्यान कर्णप्रिय और ज्ञानवर्धक होता है। मुनिश्री सुमेरमलजी का सरदारशहर प्रवास मोहन के लिए वरदान सिद्ध हुआ। उसका अधिकांश समय सन्तों के स्थान पर ही व्यतीत होने लगा।

सफलता का द्वार

जो व्यक्ति समय के मूल्य को पहचानता है और समय पर अपना कार्य करता है, सफलता उसके द्वार पर दस्तक देती है। यद्यपि मोहन ने समय-प्रबन्धन का कभी प्रशिक्षण नहीं लिया। फिर भी वह योजनाबद्ध तरीके से अपना कार्य करता था। उसने अपनी दिनचर्या निर्धारित कर ली। उस दिनचर्या का अतिक्रमण उसे बिलकुल पसन्द नहीं था। कदाचित् किसी कारणवश एक मिनट भी दिनचर्या इधर-उधर हो जाती तो मोहन उसका प्रायश्चित्त करता। उसकी दिनचर्या सूर्योदय से लगभग डेढ़ घंटे पहले शुरू होती और प्रहर रात्रि बीतने के बाद संपन्न होती। दिनरात के चौदह-पन्द्रह घंटे या कुछ कम/अधिक समय उसके सेवा, स्वाध्याय, अध्ययन, कंठस्थ आदि में बीत जाते। उसकी दिनचर्या की एक तालिका इस प्रकार है—

दिनचर्या

सुबह उठना—सूर्योदय से १.३० घण्टे पूर्व

जप आदि—३० मिनट

सेवा—२० मिनट
अध्ययन—१५ मिनट
गृहकार्य—५० मिनट
अध्ययन—१ घंटा ४५ मिनट
स्वाध्याय—५० मिनट
गोचरी-सेवा—१ घंटा १५ मिनट
गृहकार्य—३५ मिनट
अध्ययन—१ घण्टा
लिखना—४० मिनट
स्वाध्याय—१ घंटा ३० मिनट
प्रतिक्रमण—४५ मिनट
गोचरी-सेवा—३५ मिनट
स्वाध्याय—२५ मिनट
गृहकार्य—५० मिनट
साधुओं के स्थान पर आना—सूर्यास्त से १५ मिनट पूर्व
चउवीसत्थव आदि—२० मिनट
प्रतिक्रमण—४० मिनट
दर्शन आदि—३० मिनट
स्वाध्याय—४५ मिनट
सेवा आदि—१५ मिनट
जप आदि—४० मिनट
शयन—प्रहर रात्रि के बाद

उस प्रवास में मुनिश्री सुमेरमलजी के साथ मुनिश्री सोहनलालजी (चाड़वास), मुनिश्री पूनमचंदजी (श्रीडूंगरगढ़), मुनिश्री रोशनलालजी (सरदारशहर) थे। मोहन मुनिश्री सोहनलालजी के निर्देशन में अध्ययनरत रहा। विद्यार्थियों को सिखाने-पढ़ाने में मुनिश्री सोहनलालजी की कला बेजोड़ थी। वे केवल सिखाते ही नहीं थे, वैराग्य के संस्कार भी देते थे। वे

हमारे धर्मसंघ के एक श्रेष्ठ कलाकार, स्वाध्यायशील और आचारनिष्ठ सन्त थे। उन्होंने मोहन को तत्त्वज्ञान के अनेक थोकड़े कंठस्थ करा दिए, जैसे—पचीस बोल, तेरहद्वार, बासठिया, बावन-बोल, गतागत, पाना की चर्चा, लघुदण्डक तथा थोकड़ों में अन्तिम थोकड़ा माना जाने वाला 'गमा' भी कंठस्थ करा दिया। उन्होंने आचार्य भिक्षु के 'दान-दया' के सिद्धान्त से भी मोहन को अवगत कराया। मोहन घंटों-घंटों तक मुनिश्री सोहनलालजी के पास अध्ययन करता, कंठस्थ ज्ञान का पुनरावर्तन करता और तात्त्विक चर्चा करता। मोहन का उनके प्रति लगाव जैसा हो गया। जब कभी वे अस्वस्थ हो जाते तो मोहन का किसी भी कार्य में मन नहीं लगता। और तो क्या, भोजन करने में भी मन नहीं लगता। जब वह खाना खाने घर आता तब मां से कहता—'मां! आज जल्दी खाना डाल दो। मुझे अभी वापस जाना है। आज हमारे 'बापजी' के ठीक नहीं है।'

मुनिश्री रोशनलालजी वैरागियों के परिवार वालों से संपर्क करने तथा वैरागियों की देखभाल रखने में बड़े दक्ष थे। मोहन उनके संपर्क में भी बहुत रहा। वे गोचरी के लिए पधारते तब मोहन प्रायः उनके साथ रहता, रास्ते की सेवा करता।

मुनिजन मोहन को यदा-कदा दीक्षा लेने के लिए प्रेरित करते रहते। मुनिश्री सुमेरमलजी ने भी मोहन को कई बार दीक्षा लेने के लिए कहा पर मोहन हमेशा एक अच्छा श्रावक बनने की बात कहता रहा।

जल उठा दीप

वि. सं. २०३० भाद्रव शुक्ला षष्ठी। अष्टमाचार्य पूज्य कालूगणी का महाप्रयाण दिवस। मुनिश्री सुमेरमलजी ने कहा—'मोहन! आज तुम्हें एक निर्णय कर लेना चाहिए कि गृहस्थ जीवन में रहना है या साधु बनना है।' मुनिश्री के निर्देशानुसार मोहन गधैयाजी के नोहरे में एकान्त स्थान में जाकर बैठ गया। सर्वप्रथम पूज्य कालूगणी की माला फेरी, फिर चिन्तन करने लगा—'मेरे सामने दो मार्ग हैं—एक साधुत्व का और दूसरा गृहस्थ का। साधु मार्ग में सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, केशलुंचन, पादविहार आदि स्थिति-जनित कष्ट हो सकते हैं। दूसरी ओर गृहस्थ जीवन में भी अनेक प्रकार की चिन्ताएं

आदमी को सताती रहती हैं, जैसे—व्यापार में घाटा लग जाना, सन्तान का अनुकूल न होना, पति-पत्नी में से किसी एक का छोटी अवस्था में चले जाना, अन्य अनेक पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाना आदि। जब दोनों ओर कष्ट हैं तो मुझे कौनसा मार्ग स्वीकार करना चाहिए? तभी दिमाग में एक बात बिजली-सी कौंध गई कि कष्ट तो दोनों तरफ हैं। जहां साधु जीवन के कष्ट मुझे मोक्ष की ओर ले जाने वाले होंगे, वहीं गृहस्थ-जीवन के कष्ट मुझे अधोगति की ओर ले जा सकते हैं। यदि मैं जागरूकतापूर्वक संयम का पालन करूंगा तो मुझे पन्द्रह भवों में मुक्ति मिल जाएगी।' बस, भीतर में जल उठे इस चिन्तन के दीप ने मोहन को साधु बनने के लिए कृतसंकल्प बना दिया। उसने वहीं बैठे-बैठे जीवन-पर्यन्त शादी करने का त्याग कर दिया।

आज्ञा प्राप्ति के प्रयत्न

मनुष्य के जीवन में ज्वारभाटे जैसा उतार-चढ़ाव आता रहता है। जो व्यक्ति ज्वार को पकड़ लेता है, वह सौभाग्य की ड्योढी पर पहुंच जाता है और जो चूक जाता है, वह भाटे के दलदल में फंस जाता है। मोहन ने अपने भीतर उठते ज्वार को पकड़ा और सौभाग्य की ड्योढी पर पहुंच गया। मोहन के जीवन का वह एक Turning Point था। उसने भावुकता में बहकर कोई निर्णय नहीं किया। बहुत चिन्तन-मनन के बाद उसने अपने जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण निर्णय किया कि मुझे साधु बनना है।

तेरापंथ की दीक्षा मात्र स्वयं की इच्छा से ही नहीं हो सकती, परिवार की स्वीकृति भी अनिवार्य होती है। मोहन ने स्वीकृति-प्राप्ति के लिए प्रयास प्रारंभ किया। पिताश्री झूमरमलजी दूगड़ का तो स्वर्गवास हो चुका था। मोहन ने मां से कहा—'मां! मुझे दीक्षा लेनी है इसलिए आपकी आज्ञा चाहिए।' मां ने कहा—'मोहन! मैं इस बारे में कुछ नहीं कहूंगी, सुजानमल जो कहेगा वही होगा।'

उस समय श्री सुजानमलजी दूगड़ परिवार के मुखिया एवं संरक्षक थे, आज भी हैं। वे एक समझदार, निर्णयक्षम और प्रामाणिकतानिष्ठ व्यक्ति हैं। परिवार में उनका अच्छा अनुशासन है। उस समय सुजानमलजी जोहराट गए

हुए थे। मोहन ने उनके नाम एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा, जिसमें दीक्षा के लिए अनुमति मांगी गई थी। सुजानमलजी ने प्रत्युत्तर में लिखा—'दीक्षा के बारे में मैं अभी कुछ नहीं कह सकता, सरदारशहर आने पर ही बात हो सकेगी।' मार्गशीर्ष महीने में वे सरदारशहर आए। घर में दीक्षा के संदर्भ में बात हुई, तब सुजानमलजी ने साफ इनकार कर दिया। जब मोहन को स्वीकृति नहीं मिली तो उसने अनुमति नहीं मिलने तक तीन द्रव्य से अधिक खाने का त्याग कर दिया। यह क्रम कई दिनों तक चला किन्तु आज्ञा नहीं मिली। तब एक दिन मोहन ने साहस बटोरकर कहा—'भाईजी! यदि आप मुझे दीक्षा के लिए स्वीकृति नहीं देंगे तो मैं आपके घर में नहीं रहूंगा।'

सुजानमलजी—'घर से बाहर जाने पर भी तुम्हें दीक्षा तो मिलेगी नहीं।'

मोहन—'कोई बात नहीं।'

सुजानमलजी—'फिर तूं खाना कहां खाएगा?'

मोहन—'मैं घरों से मांग-मांगकर भोजन कर लूंगा किन्तु आपके घर में नहीं रहूंगा।'

यह कहकर मोहन घर से चला गया। उसके जाने के बाद मां ने कहा—'सुजान! कहीं भावावेश में आकर मोहन कोई गलत काम कर लेगा तो हमेशा के लिए हमारी आंखों से ओझल हो जाएगा। इससे तो अच्छा है कि तुम उसे दीक्षा की आज्ञा दे दो ताकि वह हमारी आंखों के सामने तो रहेगा।' विनीत पुत्र ने मां की आज्ञा को शिरोधार्य किया। जब सायंकाल सूर्यास्त से कुछ समय पहले मोहन अपनी पुस्तकें, आसन आदि लेने के लिए घर आया तब मां ने कहा—'मोहन! ऐसा करने से दीक्षा की आज्ञा नहीं मिलेगी। पहले खाना खा लो फिर भाईजी से अच्छी तरह बात कर लेना।' मोहन ने भी मां की आज्ञा को शिरोधार्य किया। खाना खाने के बाद भाईजी से बातचीत की। भाईजी ने कहा—'आषाढ़ महीने के बाद जब तुम्हारी इच्छा हो, मैं दीक्षा देने के लिए तैयार हूं।' मोहन को आज्ञा मिल गई। मां की आज्ञा तो भाईजी की अनुमति में ही निहित थी। उस दिन मोहन की प्रसन्नता का कोई पार नहीं था। वह तत्काल मुनिश्री के पास गया और सारी बात निवेदित की। उन

दिनों मोहन ने पूज्य गुरुदेव तुलसी को एक पत्र लिखा, वह अविकल रूप में इस प्रकार है–

परमपूज्य परमपिता मेरे हृदयदेव युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के चरणों में कोटि-कोटि वन्दना। गुरुदेव! पहली म्हारा भाईजी दीक्षा लेणै वास्तै मनै स्वीकृति कोनी दी। अब आपकी कृपा तथा सन्तां की प्रेरणा स्यूं मां और भाईजी कुछ महीना ठहरकर दीक्षा लेणै की स्वीकृति दे दी। गुरुदेव! मैं आपकी कृपा स्यूं तथा मुनिश्री सोहनलालजी की कृपा तथा मेहनत स्यूं इण चौमासै में कई थोकड़ा सीख्या हूं, जिकामें–पाना की चरचा, तेरहद्वार, लघुदण्डक, गतागत, बावनबोल, बासठियो, अल्पाबोहत, विचारबोध, जैन तत्त्व प्रवेश (प्रथम भाग), कर्म प्रकृति पहली सीखी हूं।

गुरुदेव! आपकै श्री चरणां में म्हारी आ ही प्रार्थना है कि बीच का चार-पांच महीना की म्हारै अन्तराय है। आ पूरी हुंता ही गुरुदेव मनै जल्दी स्यूं जल्दी दीक्षा दिरासी।

आपका सुविनीत शिष्य

मोहन

प्रसंगोपात्त एक दिन

मुनिश्री सुमेरमलजी ने दीक्षा का मुहूर्त्त देखा और वैशाख महीना श्रेष्ठ बताया। किन्तु भाईजी की स्वीकृति तो आषाढ़ महीने के बाद के लिए प्राप्त थी। मुनिश्री ने उनसे कहा–आपको दीक्षा तो देनी ही है फिर आषाढ़ के बाद दें या वैशाख में दें, क्या फर्क पड़ेगा? मात्र दो-तीन महीनों के लिए अच्छे मुहूर्त्त को क्यों टाला जाए? तब सुजानमलजी ने कहा–'गुरुदेव और आप जब उचित समझें, इसको दीक्षा दे सकते हैं, मेरी ओर से स्वीकृति है।'

मोहन के साथ हीरालाल बैद, बजरंग बरड़िया और तेजकरण दूगड़ भी वैरागी थे। मोहनलाल और हीरालाल को तो परिवार की ओर से अनुमति मिल गई किन्तु बजरंग और तेजकरण को पारिवारिक स्वीकृति नहीं मिली। वे साधु तो नहीं बने किन्तु आज वे अच्छे श्रावक अवश्य हैं।

इस दौरान मोहन का परीक्षण भी किया गया परन्तु वह हर परीक्षा में

स्वर्ण की भांति खरा उतरा। उस समय गुरुदेव तुलसी का प्रवास अणुव्रत-भवन, दिल्ली में था। मर्यादा-महोत्सव का अवसर था। मोहन अपने परिवार के साथ गुरुदर्शन के लिए दिल्ली पहुंचा। वि.सं. २०३० माघ शुक्ला अष्टमी को प्रवचन के समय उसने एक वक्तव्य दिया, वह इस प्रकार है—

अपनी बात

'परमाराध्य प्रातःस्मरणीय हृदयसम्राट युगप्रधान आचार्यश्री के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वन्दना। उपस्थित साधु-साध्वीवृंद! बुजुर्गो! माताओ! आप लोग सोच रहे होंगे यह बच्चा क्यों खड़ा हुआ है? क्या कहने जा रहा है और क्या चाहता है? मेरी चाह भौतिक नहीं, आध्यात्मिक है। मेरा कथन उपदेश नहीं, निवेदन है। प्रार्थना है वह भी किसी भौतिक वस्तु के लिए नहीं, चारित्र के लिए है। साधु बनने की आकांक्षा मन में लेकर ही मैं आज यहां खड़ा हुआ हूं। आप लोग सोच रहे होंगे कि यह बच्चा है। यह साधुत्व को क्या समझेगा? जब मैं ऐसी बात किसी से सुनता हूं तो मुझे उसकी बुद्धि पर तरस आता है, हृदय करुणा से भर जाता है। सोचता हूं इन लोगों ने धर्म को समझा या नहीं, आत्मा को जाना या नहीं। अगर जाना है तो केवल मेरे शरीर से ही मेरा अंकन क्यों करते हैं? साधुत्व आत्मा की वस्तु है या शरीर की? याद रखें, धर्म आत्मा की वस्तु है। क्या मेरी आत्मा आपसे छोटी है? क्या कोई आत्मवादी ऐसा कह सकता है? शरीर से ही जो व्यक्ति छोटे-बड़े का अंकन करते हैं वे केवल हाड़-मांस और चमड़ी देखने वाले हैं।

एक कहानी मुझे याद आती है, जो मैंने सन्तों से ही सुनी थी। अष्टावक्रजी को आत्मचर्चा के लिए राज्यसभा से निमंत्रण मिला। निश्चित समय पर अष्टावक्रजी राज्यसभा में पहुंचे। सभाभवन पण्डितों से भरा हुआ था। ज्योंही अष्टावक्रजी ने सभाभवन में प्रवेश किया, पण्डित लोग उनके शरीर को देखकर खिलखिलाकर हंस पड़े। आठ जगह से उनका शरीर टेढ़ा-मेढ़ा था। सारा भवन हंसी से गूंज उठा। अष्टावक्रजी ने राजा से कहा—'राजन्! यहां पण्डित कौन है? ये सब तो चमार ही चमार हैं। किससे चर्चा करूं?' विस्मितमना राजा ने कहा—'अष्टावक्र! ऐसे कैसे बोल रहे हो? देखो, सब सामने पण्डित ही पण्डित बैठे हैं।' अष्टावक्र—'पण्डित कहां

है राजन्! पण्डित लोग आत्म चर्चा में लीन रहते हैं और चमार लोग चमड़ी तथा हड्डियों की परीक्षा में लीन रहते हैं। ये सब मेरे शरीर को देखकर हंस रहे हैं इसलिए पंडित कहां हैं? हंसने वाले पण्डितों पर चपत-सी लग गई।

अब आपसे ही पूछूं—'जो मेरे को छोटा बतलाते हैं, उन्हें क्या कहूं? आप सोचते होंगे, यह साधुत्व के नियम कैसे निभाएगा? अतिमुक्तक मुनि ने कैसे निभाया था? गजसुकुमाल मुनि ने कैसे कष्ट सहे? परीषह आत्मबल से ही सहा जाता है।'

अस्तु, पूज्य गुरुदेव! मेरी ओर ध्यान दें। इस बच्चे का भविष्य आपकी दृष्टि पर निर्भर है। कृपा करके प्रतिक्रमण सीखने का आदेश तो अभी फरमाएं।'

प्रवचन के दौरान पूज्य गुरुदेव ने मोहन से एक प्रश्न पूछा—'बोलो वैरागीजी! आश्रव किसे कहते हैं?' मोहन ने उत्तर दिया—'कर्मों के आने के द्वार को आश्रव कहते हैं।' प्रवचन-संपन्नता के बाद गुरुदेव अणुव्रत-भवन में ऊपर पधार रहे थे। प्रथम मंजिल की सीढ़ियों के बीच पूज्यप्रवर कुछ क्षण रुके और वहीं मोहन को प्रतिक्रमण सीखने का आदेश फरमा दिया। मोहन का रोम-रोम खिल उठा। वह अपने परिवार के साथ पुनः सरदारशहर आ गया।

दीक्षा दिल्ली में या सरदारशहर में

प्रतिक्रमण आदेश के बाद पूज्यप्रवर ने चिन्तन किया कि दीक्षा कहां हो, दिल्ली में या सरदारशहर में? उन दिनों ट्रेनों की हड़ताल चल रही थी और मोहन की अवस्था भी छोटी थी। मात्र बारह वर्ष के बालक की दीक्षा दिल्ली शहर में होना आलोचना का विषय बन सकता था। मोहन के परिवार की भी यही इच्छा थी कि दीक्षा सरदारशहर में ही हो। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आचार्यवर ने फरमाया—'मोहनलाल और हीरालाल की दीक्षा वि.सं. २०३१ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को सरदारशहर में ही शिष्य मुनि सुमेर (लाडनूं) के सान्निध्य में हो सकेगी।'

दीक्षा-तिथि की घोषणा के बाद घर में मोहन का विशेष ध्यान रखा

जाता। उसकी इच्छापूर्ति का प्रयास किया जाता। मोहन की मौसी श्रीमती झूमादेवी नखत कोलकाता में रहती थी। वह मोहन के लिए घड़ी लेकर आई। मोहन को घड़ी का बहुत शौक था। वह अपने हाथ पर घड़ी बांधकर सबको बार-बार दिखाता। उस समय तक बच्चों के हाथ पर घड़ी बंधी हुई बहुत कम देखने को मिलती थी। दीक्षा के बाद भी कई दिनों तक घड़ी देखने के लिए मोहन अपने हाथ को देखता, फिर याद आता कि अब मैं साधु बन गया हूं।

सौभाग्य की सौगात

वि.सं. २०३१ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (५ मई १९७४) का सुप्रभात मोहन के लिए सौभाग्य की सौगात लेकर आया। वह प्रातः लगभग चार बजे ही मुनिश्री के पास पहुंच गया। मुनिश्री ने फरमाया—'मोहन! आज इतनी जल्दी आ गया?' मोहन ने कहा—'मुनिप्रवर! आज तो मेरे लिए सोने का सूरज उगा है। मैं बहुत सौभाग्यशाली हूं कि आज मुझे आपके करकमलों से दीक्षित होने का सुअवसर मिलेगा।'

गधैयाजी का नोहरा। हजारों लोगों की उपस्थिति। लम्बे व भव्य जुलूस के साथ दोनों वैरागी श्री समवसरण में पहुंचे। अनेक लोगों ने उनके भावी जीवन के प्रति मंगल भावनाएं व्यक्त कीं। मोहन के ज्येष्ठ भ्राता अमरचन्दजी दूगड़ ने आज्ञा पत्र का वाचन किया। मोहन ने भी छोटा-सा वक्तव्य दिया। कार्यक्रम के दौरान गुरुदेव तुलसी द्वारा प्रदत्त संदेश का वाचन किया गया, उसका कुछ अंश इस प्रकार है—

'जैन मुनि की चर्या कठिन है, यह बात सही है। तेरापंथी जैन मुनियों की चर्या और अधिक कठिन है। इस चर्या में पांच महाव्रतों की स्वीकृति के साथ जीवनभर गुरु के चरणों में समर्पित रहना, प्रत्येक काम उनके निर्देश से करना, संघीय व्यवस्थाओं का हृदय से पालन करना आदि ऐसे विधान हैं जो व्यक्ति को चारों ओर से थाम लेते हैं। फिर भी उसमें रम जाने के बाद वे कठिनाइयां सहज बन जाती हैं, आनन्दप्रद लगने लगती हैं।

दीक्षा-संस्कार का कार्यक्रम प्रायः आचार्यश्री के सान्निध्य में होता है।

कभी-कभी विशेष परिस्थितियों में आचार्य की आज्ञा से अन्यत्र भी ऐसे कार्यक्रम हो सकते हैं। अभी-अभी सरदारशहर में दीक्षा-संस्कार का एक कार्यक्रम होने वाला है। उसमें दीक्षित होने वाले बालक मोहनलाल और हीरालाल अपने आपको मुनिचर्या के लिए समर्पित कर रहे हैं। यद्यपि इन बालकों की अवस्था बहुत अधिक नहीं है पर इनके संस्कारों की परिपक्वता और विचारों की दृढ़ता उल्लेखनीय है। पारिवारिक लोगों ने अपनी ओर से इनकी कसौटी की और ये उत्तीर्ण हो गए। मैंने भी इनको परखा। मुझे इनके जीवन में आध्यात्मिक चेतना का स्फुरण परिलक्षित हुआ। मैं इनसे कहना चाहूंगा कि ये एक बार दो क्षण रुककर सोचें, मुड़कर देखें। साधु जीवन की कठिनाइयों के साथ अपना आत्मबल तोल लें। इनके आत्मबल, आत्मविश्वास और आत्मबोध की समन्विति में ही साधना की चरितार्थता है।

इनकी दीक्षा दिल्ली में संभावित थी किन्तु यातायात संबंधी अत्यधिक कठिनाइयों के कारण सरदारशहर में ही दीक्षा देने का निर्णय लिया गया। वहां शिष्य मुनि सुमेर (लाडनूं) के सान्निध्य में ये दोनों किशोर अपनी मंजिल की ओर पदन्यास करेंगे, तेरापंथ धर्मसंघ में मुनि रूप में दीक्षित होंगे। जिन प्रबल मनोभावों के साथ ये अध्यात्म-विकास के लिए संयमी साधकों का पथ चुन रहे हैं, उस पर उतने ही प्रबल उत्साह के साथ बढ़ते रहेंगे, ऐसा विश्वास है। मैं इन दोनों किशोरों के प्रति अपनी शुभकामना व्यक्त करता हूं तथा अपना आशीर्वाद देता हूं कि ये ज्ञान, दर्शन, चारित्र की त्रिवेणी में निष्णात होते हुए संसार का मार्गदर्शन करें। जीवन परिवर्तन के साथ इनके नाम भी परिवर्तित हो जाएं। इस दृष्टि से मैं मोहनलाल को मुनि मुदितकुमार और हीरालाल को मुनि हेमन्तकुमार नाम से संबोधित करते हुए एक बार फिर उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूं।'

मुनिश्री सुमेरमलजी ने पूज्यप्रवर की अनुमति से दोनों बालकों को दीक्षा प्रदान की। फिर दीक्षा विधि के अनुसार चोटी के अवशिष्ट केशों का लुंचन किया। तत्पश्चात नामकरण संस्कार संपन्न हुआ। मुनि मुदितकुमारजी सरदारशहर के इक्कीसवें सन्त थे। सरदारशहर प्रारंभ से ही उर्वरा भूमि रही

है। तृतीय आचार्यश्री रायचन्दजी स्वामी के शासनकाल से लेकर आज तक यानी सन् २०१० तक यहां के लगभग ढाई सौ साधु-साध्वियों व समणियों की दीक्षाएं हो चुकी हैं।

भविष्यवाणी रेखाशास्त्री की

दीक्षा से कुछ दिन पूर्व सरदारशहर के कार्यकर्ता एक रेखाशास्त्री अध्यापक छगनजी मिश्रा को मुनिश्री सुमेरमलजी के पास लेकर आए। उन्होंने मुनिश्री के हाथ और पैर की रेखाएं देखीं और कहा—'आप दो बालकों को छह महीने के भीतर-भीतर दीक्षा देंगे।' उसी समय उन्होंने मोहन के भी हाथ व पैर की रेखाएं देखीं और कहा—'यह बालक आपकी (मुनिश्री की) विद्यमानता में ही धर्मसंघ में सर्वोपरि स्थान प्राप्त करेगा।' दोनों ही भविष्यवाणी शत प्रतिशत सच हो गई।

विलक्षण मेधा

जिस दिन दीक्षा स्वीकार की उसी दिन उन्होंने दसवेआलियं सूत्र कंठस्थ करना प्रारंभ कर दिया। सात सौ अनुष्टुप श्लोक प्रमाण दसवेआलियं सूत्र को मात्र चालीस दिनों में अर्थसहित कंठस्थ कर लिया।

मुनि मुदितकुमारजी का प्रथम चतुर्मास सरदारशहर में हुआ। उस चतुर्मास में उन्होंने कुछ दिनों तक उपदेश (प्राक् वक्तव्य) दिया। उनका प्रथम उपदेश दसवेआलियं सूत्र के प्रथम अध्ययन 'दुमपुप्फिया' पर आधारित था।

दीक्षा के कुछ दिनों बाद ही सरदारशहर के प्रबुद्ध प्रशिक्षक श्रावक श्री भंवरलालजी बैद से मुनि हेमन्तकुमारजी और मुनि मुदितकुमारजी ने अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करना प्रारंभ कर दिया। मात्र छह महीनों में ही मुनिद्वय बारहवीं कक्षा (+ 2 Standerd) तक पहुंच गए। श्री भंवरलालजी मुनिद्वय की प्रबुद्धता से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने अनेक बार मुनिश्री सुमेरमलजी से कहा—'इतने ग्रहणशील विद्यार्थी मुझे पहली बार मिले हैं।' श्री भंवरलालजी तेरापंथ धर्मसंघ के श्रद्धानिष्ठ और समर्पित श्रावक थे। वे अंग्रेजी और संस्कृत भाषा के अधिकृत विद्वान, कुशल अध्यापक, आयुर्वेद के ज्ञाता एवं चिकित्सक भी थे।

आत्म निवेदन गुरु चरणों में

सरदारशहर चतुर्मास संपन्नकर मुनिश्री सुमेरमलजी ने श्रीडूंगरगढ़ की ओर प्रस्थान किया। गुरुदेव तुलसी दिल्ली चतुर्मास संपन्नकर श्रीडूंगरगढ़ पधारे। चूंकि इस बार का मर्यादा-महोत्सव श्रीडूंगरगढ़ घोषित था। मुनि पर्याय में प्रथम बार गुरुदर्शन कर दोनों बालमुनि हर्षविभोर हो उठे। मुनिश्री ने मुनिद्वय को गुरुचरणों में समर्पित किया। नवदीक्षित दोनों मुनियों ने एक गीत के माध्यम से अपनी भावना श्रीचरणों में प्रस्तुत की। गीत के बोल हैं—

लय : चांद चढ्यो गिगनार

मिल्या आज भगवान, म्हारा भाग्य फळ्या जी, भाग्य फळ्या।
पूर्ण हुया अरमान, घी रा दीप जळ्या जी, दीप जळ्या।।

१. मिल्यो सफल उपदेश, अंतर नेत्र खुल्या जी, नेत्र खुल्या।
पाकर तव आदेश, संयम राह चल्या जी, राह चल्या।।

२. उभय मुदित हेमन्त, चरणां शीश धरै जी, शीश धरै।
अर्पण तन मन तंत श्रद्धा युक्त करै जी, युक्त करै।।

३. शासण री बण शान, गण में खूब बढ़ां जी, खूब बढ़ा।
द्यो ऐसा वरदान सद्गुण शिखर चढ़ां जी, शिखर चढ़ां।।

४. बणा इंगियागार, सिर पर हाथ धरो जी, हाथ धरो।
स्वप्न करां साकार, ऐसी शक्ति भरो जी, शक्ति भरो।।

५. दांई बांईं आंख, आपरी कहलावां जी, कहलावां।
जगत भरै आ साख कार्य कर दिखलावां जी, दिखलावां।।

६. खड्या जोड़ जुग हाथ विनती स्वीकारो जी, स्वीकारो।
अन्तर दिल स्यूं नाथ भरल्यो हुंकारो जी, हुंकारो।।

पूज्यप्रवर ने इनकी शिक्षा, संस्कार, चर्या आदि में जागरूकता देखकर बहुत संतोष व्यक्त किया। मुनिद्वय दसवेआलियं का अर्थ बताने में, तात्त्विक चर्चा करने में आगे रहते इसलिए मर्यादा-महोत्सव में उपस्थित

साधु-साध्वियों के वे आकर्षण के केन्द्र बने रहे। दोनों में अतिशय समानता देखकर पूज्यवर ने मुनि हेमन्तकुमार का नाम परिवर्तित कर मुनि उदितकुमार कर दिया। दूसरे वर्ष में इनकी सार-संभाल का दायित्व पुनः मुनिश्री सुमेरमलजी को सौंपा और श्रीडूंगरगढ़ में ही चतुर्मास करने का निर्देश प्रदान किया। मुनि मुदितकुमारजी ने लगभग एक वर्ष में ही आचार्य हेमचन्द्र द्वारा रचित पन्द्रह सौ अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण संस्कृत भाषा में निबद्ध अभिधान चिन्तामणि कोश (नाममाला) कंठस्थ कर लिया। कंठस्थ करने में उनकी बड़ी रुचि थी। कभी-कभी तो वे एक दिन में तीस से भी ज्यादा श्लोक कंठस्थ कर लेते। कंठस्थ के प्रारंभिक क्रम में मुनिश्री स्वयं उनके साथ श्लोकों/पद्यों का उच्चारण करते, उन्हें सिखाते और पुनः उनसे सुनते। संभवतः ऐसा करने का उद्देश्य यही था कि बालमुनि का उच्चारण शुद्ध हो जाए और कंठस्थ किया हुआ ज्ञान हमेशा स्मृति में रहे। बालमुनि अध्ययन करने में इतने तल्लीन हो जाते कि साधु चर्या के अतिरिक्त जब देखो तब सीखते और स्वाध्याय करते ही नजर आते। मानो बात करना तो वे जानते ही नहीं थे। वे प्रारंभ से ही स्थिरयोगी, एकाग्रचित्त और अल्पभाषी थे। एक बार प्रामाणिक प्रवर सेठ श्री सुमेरमलजी दूगड़ (सरदारशहर) ने मुनिश्री सुमेरमलजी से कहा—'आप इनको बीच-बीच में कुछ समय विश्राम करवाएं, कुछ मनोरंजन भी करने दें अन्यथा ये तनावग्रस्त हो जाएंगे।' प्रामाणिक प्रवर के परामर्श के बाद मुनिश्री ने कुछ कहानियां, कुछ आदर्श जीवन चरित्र पढ़ने के लिए उन्हें दिए। यदा कदा मुनिश्री स्वयं भी उन्हें घटना प्रसंग सुनाते रहते।

ज्ञान और साधना

दीक्षा के बाद तीसरा चतुर्मास गुरुदेव तुलसी के साथ सरदारशहर में किया। उस समय वे संघ परामर्शक मुनिश्री मधुकरजी के साझ (ग्रुप) में रहे। फिर चौथा एवं पांचवां चतुर्मास मुनिश्री रूपचन्दजी (सरदारशहर) के साथ जयपुर और दिल्ली में किया। इन दो चतुर्मासों में मुनिश्री रूपचन्दजी की प्रेरणा व मुनिश्री मनककुमारजी के श्रम से मुनि मुदितकुमारजी ने संस्कृत भाषा का अच्छा अध्ययन किया। इससे पूर्व मुनिश्री सुमेरमलजी उन्हें

संस्कृत साहित्य पढ़ाते। पण्डित रामकुमारजी संस्कृत व्याकरण कालुकौमुदी की साधनिका कराते। कुछ ही वर्षों में उन्होंने संस्कृत भाषा का गंभीर अध्ययन कर लिया। वे संस्कृत में धाराप्रवाह बोलने लगे और लिखने भी लगे। अध्ययनकाल के दौरान मुनि मुदितकुमारजी ने संस्कृत भाषा में कुछ कहानियां लिखीं, जिन्हें आज हम 'शेमुषी' नामक ग्रंथ में पढ़ सकते हैं।

उनकी शिक्षा के साथ साधना की ओर अग्रसर होने की प्यास निरन्तर बढ़ती रही। एक बार उन्होंने गुरुदेव तुलसी से निवेदन किया—'गुरुदेव! अध्ययन करने से मुझे आध्यात्मिक लाभ नहीं लगता इसलिए अब मैं ध्यान साधना में लगना चाहता हूं।' गुरुदेव ने फरमाया—'एकांगी दृष्टिकोण ठीक नहीं होता। कुछ घंटे ध्यान साधना करो पर साथ में अध्ययन भी जरूरी है। दोनों साथ-साथ करते रहो।' मुनि मुदितकुमारजी उस समय ध्यान बहुत किया करते थे। घंटों-घंटों तक एक आसन में ध्यान लगाए बैठे रहते। उस समय उन्हें कुछ आभास भी होता था। समय आने पर वे पूर्वाभास शत प्रतिशत सत्य हो जाते। लगता है उन्हें उस समय भी भविष्यदृष्टि प्राप्त थी।

एक महत्त्वपूर्ण साहसिक निर्णय

मुनि मुदितकुमारजी पूज्यप्रवर के मार्गदर्शन में निरन्तर गति- प्रगति करते रहे। उनकी प्रज्ञा की पारदर्शिता निखरती गई। वे हर क्षेत्र में आगे बढ़ते गए। साधना के पथ में आने वाली कठिनाइयों को साहस के साथ झेलते गए और सफलता के परचम फहराते गए। सचमुच, मुश्किल-भरे दिनों में जिसका साहस बरकरार रहता है, वही व्यक्ति कुछ कर गुजरने की काबिलियत रखता है। सन १९७९ का प्रसंग है। मुनि मुदितकुमारजी, मुनिश्री रूपचन्दजी के साथ अशोक विहार दिल्ली में प्रवास कर रहे थे। उस समय युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ का भी अणुव्रत भवन, दिल्ली में प्रवास हो रहा था। एक दिन अपराह्न में मुनिश्री रूपचंदजी ने मुनि मुदितकुमारजी से कहा—'मैं इस संघ से अलग होने जा रहा हूं। तुम अपना चिन्तन कर लो कि तुम्हें कहां रहना है? हमारे साथ चलना है या यहीं (संघ में) रहना है।' बालमुनि मुदितकुमारजी ने तत्काल कहा—'मैं तो संघ में ही रहूंगा।' मुनिश्री रूपचन्दजी ने बड़ी शालीनता के साथ कहा—'तुम चिन्ता मत करना। हम

तुम्हें युवाचार्यश्री के पास पहुंचा देंगे।' दूसरे दिन मुनिश्री रूपचन्दजी आदि सन्त अशोक विहार से विहार कर सी. सी. कॉलोनी आए। उधर युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' (सुजानगढ़) और मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी (मुंबई) को मुनि मुदितकुमारजी के पास भेजा। अगले दिन मुनिश्री रूपचन्दजी आदि सन्त सदर बाजार में सुराणा धर्मशाला में प्रवास कर रहे थे। उस दिन दैनिक पत्र में खबर आई कि मुनि रूपचन्दजी ने तेरापंथ संघ से त्यागपत्र दे दिया। मुनि रूपचन्दजी और मुनि मनककुमारजी संघ से अलग हो गए। मुनि अशोककुमारजी (बैंगलोर) कुछ दिन पहले ही अलग हो चुके थे। तब मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' मुनि मुदितकुमारजी के पास आए और पूछा—'मुनि रूपचन्दजी आदि दोनों सन्त संघ से अलग हो गए हैं अब तुम्हारी क्या इच्छा है?' बालमुनि ने कहा—'मैं तो संघ में ही रहूंगा।'

कृतज्ञता ज्ञापन और खमतखामणा के बाद मुनि मुदितकुमारजी ने मुनिश्री सुमेरमलजी के साथ वहां से प्रस्थान कर दिया। मध्याह्न में वे अणुव्रत भवन पहुंच गए, जहां युवाचार्यवर विराजमान थे। मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी ने निवेदन किया— 'युवाचार्यश्री! मुदित मुनि ने अच्छा परिचय दिया है।' युवाचार्यप्रवर ने फरमाया—'यह तो मुझे विश्वास ही था।' उन दिनों गुरुदेव तुलसी पंजाब में प्रवास कर रहे थे। वहां से भी एक संदेश आया। उसमें लिखा था—**'मुनि मुदितकुमार ने जो शासनभक्ति का परिचय दिया है, उससे मैं गद्‌गद हूं।** उसके अध्ययन और साधना की समुचित व्यवस्था की जाए।' सचमुच जिस ग्रुप में चार सदस्य हों और चारों में परस्पर अच्छा सामंजस्य और सौहार्द हो, उस ग्रुप के मुखिया सहित तीन सदस्यों का निर्णय एक हो और सबसे छोटे (चौथे) सदस्य का निर्णय भिन्न हो तो बहुत कठिनाई हो सकती है किन्तु मुनि मुदितकुमारजी ने साहस, धैर्य और विजन के साथ अपने भविष्य का निर्णय लिया। सच है, प्रवाह के विपरीत बहना संघर्ष और खतरों से खाली नहीं होता किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि कोई साहसिक कदम ही प्रतिस्रोतगामी बन सकता है। **मुनि मुदितकुमारजी की संघनिष्ठा ने आचार्यश्री तुलसी और युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के मन में एक नया विश्वास जगा दिया। बालमुनि के इस**

निर्णय ने पूज्यवरों के दिल में एक अमिट छाप छोड़ दी। उस समय उनकी अवस्था मात्र सत्रह वर्ष थी किन्तु पूज्यप्रवरों की पारखी आंखें उनमें तेरापंथ का शुभ भविष्य देखने लगीं।

३० अगस्त २००१ को स्वयं आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—'सन १९७९ में मैं दिल्ली में था। उस समय हमारे संघ के कुछ साधु पृथक् हो गए। ये (महाश्रमण) पृथक् होने वाले साधुओं के साथ थे पर इन्होंने अपना स्पष्ट निर्णय दिया कि मुझे तो संघ में ही रहना है। उस घटना ने मुझे पहली बार आकृष्ट किया। मैंने बाद में गुरुदेव से निवेदन किया कि इतनी छोटी अवस्था में भी इनमें जो संघनिष्ठा, आचारनिष्ठा है, वह उल्लेखनीय है। हमें इनकी ओर ध्यान देना चाहिए। उसके बाद तो मेरे और गुरुदेव के बीच इनको लेकर बातचीत होती रहती। धीरे-धीरे इन्हें कार्य से भी जोड़ दिया गया।'

सेवा का सुअवसर

वि.सं. २०४१ ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी (१३ मई १९८४) को लाडनूं में गुरुदेव तुलसी ने मुनि मुदितकुमारजी से पूछा—'तुम क्या काम कर सकते हो?'

मुनि मुदितकुमारजी—'जो गुरुदेव फरमाएंगे।'

गुरुदेव तुलसी—'आज तक हमारी पंचमी समिति की पात्री मुनि मधुकरजी रखते थे। अब से तुम रखा करो।'

इस निर्देश के साथ ही मुनि मुदितकुमारजी गुरुदेव तुलसी की व्यक्तिगत सेवा में नियुक्त हो गए। तेरापंथ धर्मसंघ में इस नियुक्ति का विशेष महत्त्व है। इससे अनायास ही निकटता से गुरुसेवा का अलभ्य अवसर प्राप्त हो जाता है।

लगभग बारह वर्षों तक मुनि मुदितकुमारजी को पूज्यवर की पात्र-वहन सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस दायित्व का उन्होंने बड़े अहोभाव व जागरूकता के साथ निर्वाह किया। उस दिन से वे स्थायी रूप से गुरुकुलवासी बन गए। संघीय विकास की दृष्टि से उनका विकास क्रम शुरू

हो गया। इसी वर्ष के जोधपुर चतुर्मास में मुनि मुदितकुमारजी को आचार्यप्रवर ने प्रातःकालीन प्रवचन से पूर्व उपदेश देने के लिए निर्देश दिया। लगभग पूरे चार माह तक उन्होंने बहुत सुन्दर तरीके से आगमाधारित उपदेश दिया।

अंतरंग सहयोगी

वि.सं. २०४२ माघ शुक्ला सप्तमी (१६ फरवरी १९८६)। मर्यादा-महोत्सव का अवसर। उदयपुर का विशाल प्रवचन पण्डाल। गुरुदेव तुलसी ने मुनि मुदितकुमारजी को युवाचार्य महाप्रज्ञ के अंतरंग सहयोगी के रूप में नियुक्त करते हुए कहा—'संघ में बहुआयामी प्रवृत्तियों को देखकर लगता है कि हमारे युवाचार्य महाप्रज्ञ को भी किसी सहयोगी की अपेक्षा है इसलिए आज मैं मुनि मुदित को अंतरंग सहयोगी के रूप में नियुक्त करता हूं।' इस नियुक्ति के साथ ही वे संघ के व्यवस्था पक्ष से जुड़ गए। उनका दायित्व बढ़ गया और कार्यक्षेत्र भी विस्तृत हो गया। इससे पूर्व वे मात्र आत्मकेन्द्रित थे, अपने आपमें मस्त थे, व्यस्त थे। अन्तरंग सहयोगी बनने के बाद उनकी सोच का दायरा बहुत विशाल हो गया। वे सबके विकास के बारे में सोचने लगे। उनका व्यक्तित्व उभरकर सामने आने लगा।

साझपति

वि.सं. २०४३, वैशाख शुक्ला चतुर्थी (२३ मई १९८६) की रात्रि। ब्यावर का तेरापंथ भवन। गुरुदेव तुलसी ने साधु सभा के मध्य मुनि मुदितकुमारजी को साझपति (ग्रुप लीडर) बनाया। मुनि ऋषभकुमारजी को सहयोगी के रूप में तथा शैक्ष मुनि धर्मेशकुमारजी को उनके संरक्षण में रखा।

अनौत्सुक्य का निदर्शन

सन् १९८७ का प्रसंग। पूज्य गुरुदेव तुलसी का प्रवास अणुव्रत भवन, दिल्ली में हो रहा था। तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी पूज्यप्रवर से मिलने आए। प्रायः सभी सन्त उन्हें देखने और सुनने के लिए एकत्रित हो गए किन्तु मुनि मुदितकुमारजी अपने कक्ष में अनौत्सुक्य भाव से कार्य करते रहे।

महाश्रमण

वि.सं. २०४६ भाद्रपद शुक्ला नवमी (९ सितम्बर १९८९)। योगक्षेम वर्ष का आयोजन। लाडनूं, जैनविश्वभारती में सुधर्मा सभा का प्रांगण। गुरुदेव तुलसी का चौपनवां पदारोहण दिवस। उल्लासमय वातावरण में चतुर्विध धर्मसंघ अपने आराध्य को वर्धापित कर रहा था। अचानक आचार्यवर ने अपने पट्टोत्सव को नया मोड़ देते हुए कहा—'तेरापंथ धर्मसंघ में अनेक विलक्षण कार्य हुए हैं। उन विलक्षणताओं में मैं एक और नया कार्य करना चाहता हूं। आज मैं मुनि मुदित को 'महाश्रमण' के पद पर नियुक्त करता हूं। यह पद धर्मसंघ में कार्यकारी, नए दायित्वों से परिपूर्ण और चिरजीवी रहेगा।' इस घोषणा के पश्चात आचार्यवर ने मुनि मुदितकुमारजी को नियुक्ति पत्र प्रदान किया। उसकी भाषा इस प्रकार है—

अध्यात्मनिष्ठा, साधना, शिक्षा, सेवा, विनम्रता, संघनिष्ठा, गंभीरता आदि विशेषताओं को ध्यान में रखकर मैं मुनि मुदितकुमार को 'महाश्रमण' के पद पर नियुक्त करता हूं।

- धर्मसंघ में युवाचार्य के बाद इसका स्थान रहेगा।
- यह युवाचार्य के कार्य में सतत सहयोगी रहेगा।
- युवाचार्य की तरह साध्वियों, समणियों को पढ़ाना इसके कार्यक्षेत्र में रहेगा।
- आहार-पानी समुच्चय में होगा।
- सब प्रकार के विभागीय कार्यों तथा संघीय बोझ की पांती से मुक्त रहेगा।

५४वें पट्टोत्सव के उपलक्ष्य में **आचार्य तुलसी**
जैनविश्वभारती ९/९/१९८९
लाडनूं **ह. महाप्रज्ञ**

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ ने नव मनोनीत महाश्रमण को शुभाशीष देते हुए कहा—'महाश्रमण आचार्यवर का इतना विश्वास प्राप्त कर सका, मेरे मन को भी जीत सका और हमारी सन्निधि प्राप्त कर सका, उसके लिए मैं शुभाशंसा

करता हूं कि वह इस कार्य के लिए अपनी अर्हता और ओजस्विता को और अधिक प्रकट करे तथा धर्मसंघ की अधिकाधिक सेवा करे।'

महाश्रमण बनने के बाद वे युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ के हर कार्य में सहयोगी बन गए। चाहे चिन्तन गोष्ठियां हों या अन्य कोई कार्य, सबमें उनकी संभागिता रहने लगी। प्रायः हर कार्यों में उनकी उपस्थिति अनिवार्य-सी प्रतीत होने लगी।

क्या हम ही करते रहेंगे

सामान्यतया साध्वियों-समणियों का अध्यापनकार्य आचार्य/युवाचार्य ही करते हैं किन्तु महाश्रमण की नियुक्ति के बाद यह कार्य भी उनके जिम्मे आ गया। एक दिन गुरुदेव तुलसी ने महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी को समणियों एवं मुमुक्षु बहनों को उच्चारण शुद्धि की दृष्टि से विशेष प्रशिक्षण देने का निर्देश दिया। उन्होंने निवेदन किया—'गुरुदेव! यह कार्य आपश्री की सन्निधि में ही चले तो ठीक रहेगा।' गुरुदेव ने कहा—'क्या हमेशा हम ही करते रहेंगे। आगे तो तुम्हें ही करना है इसलिए तुम ही उन्हें अभ्यास कराओ।'

एक प्रयोग, एक परीक्षण

महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी प्रारंभ से ही आत्मकेन्द्रित थे किन्तु जब वे महाश्रमण बन गए और शास्ता की निगाहें उनमें शुभ भविष्य देखने लगीं, उस स्थिति में यह आवश्यक हो गया कि उनका सम्पर्क क्षेत्र व्यापक बने। जनता महाश्रमणजी की क्षमता से परिचित हो और महाश्रमणजी को भी कुछ सीखने, समझने और जानने का अवसर प्राप्त हो। इन कई बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए गुरुदेव तुलसी ने उनको स्वतंत्र यात्रा कराने का विचार किया।

यात्रा मुनि जीवन का एक अभिन्न अंग है। एक जैन मुनि चतुर्मास के अतिरिक्त आठ महीनों तक प्रायः भ्रमणशील रहता है, यात्राएं करता है। इससे धर्म प्रभावना तथा संघ प्रभावना होती है और व्यक्तिगत अनुभव और जनसंपर्क भी बढ़ता है। महाश्रमण बनने के बाद गुरुदेव तुलसी ने उनको

अपनी जन्मभूमि सरदारशहर की यात्रा करने का निर्देश दिया। महाश्रमण पर्याय की वह उनकी प्रथम स्वतंत्र यात्रा थी। लगभग अड़तालीस दिनों की प्रभावशाली यात्रा संपन्नकर उन्होंने छोटी खाटू में गुरुदेव के दर्शन किए। युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उनकी अगवानी की और स्वयं आचार्यवर ने पट्ट से नीचे उतरकर उनको अपने हृदय से लगा लिया। अपने योग्य शिष्य की सार्थक और सफल यात्रा से पूज्यप्रवर बहुत प्रसन्न थे।

कार्यक्रम के दौरान युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—'आचार्यश्री महाज्योति हैं। उनकी एक रश्मि, एक किरण कुछ समय के लिए गई और आज पुनः मिल गई। आचार्यवर बहुत दूरदर्शी हैं। उनके हर कार्य के पीछे एक विशेष चिन्तन होता है। इस यात्रा के पीछे भी उनका एक उद्देश्य था।' उस अवसर पर गुरुदेव तुलसी ने कहा—'महाश्रमण मुनि मुदितकुमार थली संभाग में अपनी सात सप्ताह की यात्रा सम्पन्नकर खाटु पहुंच गया। उसे विशेष रूप से सरदारशहर के लिए भेजा गया था, आज वापिस आ गया। महाश्रमण का महत्त्व बढ़ा है, बढ़ाया गया है। किसी को अखरा नहीं। सबने हमारी परख को सराहा है। यात्रा एक दर्पण है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व का चित्र सामने आ जाता है। सरदारशहर के लोग तो इस यात्रा से अत्यधिक प्रसन्न हैं ही पर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस यात्रा से महाश्रमण को स्वयं अपने आपको समझने-समझाने का मौका मिला और मुझे भी इसे निरखने-परखने का अवसर मिला।'

खमतखामणा महाश्रमण से

२६ अगस्त १९९० का सुप्रभात। पाली चतुर्मास के दौरान क्षमायाचना दिवस का कार्यक्रम। गुरुदेव ने सबसे पहले अपने सबसे निकटस्थ युवाचार्यश्री महाप्रज्ञजी से भावपूर्ण खमतखामणा किया। फिर महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी से खमत-खामणा किया। तत्पश्चात महाश्रमण पद पर प्रतिष्ठित करने के बाद प्रथम बार गुरुदेव ने उनसे खमतखामणा करते हुए कहा—'मेरे सामने महाश्रमण मुदित उपस्थित है। हम एक छोटे से बच्चे को आगे लाए हैं। इसे महाश्रमण बना दिया है। हम जो काम करते हैं, चिन्तनपूर्वक करते हैं, परामर्शपूर्वक करते हैं, भावुकतावश

किसी को आगे नहीं लाते। अगर किसी ने सोच लिया हो कि ऐसे ही अचानक लाकर खड़ा कर दिया है तो यह उसकी भूल है। मैंने जो कुछ किया है, वह पूरे विश्वास के साथ किया है, इरादतन किया है और निष्पक्षता से किया है। यह (महाश्रमण) संकोचशील है। इसे जो दायित्व सौंपा गया है, उसके प्रति इसे पूरी तरह जागरूक रहना चाहिए। इसके प्रति भी मेरे मन में कोई विचार आया हो तो मैं खमत-खामणा करता हूं।'

एक अनोखा उपहार

वि. सं. २०४७ मार्गशीर्ष महीने में महाश्रमणजी की सिवाणची-मालाणी क्षेत्र की यात्रा हुई। पाली से विहार कर पचपदरा, बालोतरा, टापरा, जसोल आदि अनेक क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए उन्होंने सोजत रोड़ में पूज्य गुरुदेव के दर्शन किए। जैसे ही महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी ने प्रवचन पण्डाल में प्रवेश किया, युवाचार्य महाप्रज्ञ ने उनकी अगवानी की। आचार्यवर ने खड़े होकर उनको सहलाया और अपने सीने से लगाया। हजारों लोगों की उपस्थिति में वह एक आकर्षक दृश्य था। सबके चेहरे प्रसन्न थे। यात्रा की सफलता वचनातीत और कल्पनातीत रही।

कार्य की सफलता के लिए पसीना बहाना होता है। इस यात्रा में महाश्रमणजी ने बहुत श्रम किया। अनेक वैरागी भाई-बहिन तैयार हुए। लोगों की श्रद्धा मजबूत बनी और जैन शासन की बहुत प्रभावना हुई। लोगों की नजरों में यह उनकी विजय यात्रा थी किन्तु उन्होंने कहा—'भले ही सब लोग माने कि मेरी यह विजय यात्रा है पर वास्तव में तो विजय यात्रा की शुरूआत गुरुचरणों में समर्पण के साथ होती है। मैं प्रमाद पर विजय यात्रा, कषाय पर विजय यात्रा, अशुभयोग पर विजय यात्रा और अन्त में शुभयोग पर भी विजय यात्रा का आकांक्षी हूं।'

ऐसे सुयोग्य शिष्य की विजय यात्रा से प्रसन्न होकर पूज्य गुरुदेव तुलसी ने कहा—'आज मेरी एक चिन्ता कम हुई है। मुझे एक चिन्ता थी कि मैंने मुनि मुदित को महाश्रमण के पद पर नियुक्त तो कर दिया पर यह तो कुछ बोलता ही नहीं है। दिनभर अपने में ही मस्त रहता है पर इस यात्रा ने मुझे निश्चिन्त बना दिया। आज मुनि मुदित एक यात्रा करके लौटा है। इस

उपलक्ष्य में मैं इसे कुछ देना चाहता हूं पर क्या दूं? महाश्रमण का पद तो इसे पहले ही दे दिया। बोलो महाप्रज्ञजी! अब इसे क्या दूं?' आचार्यवर के इस प्रश्न ने सबको चौंका दिया। किसी को कुछ भी ज्ञात नहीं था। सब कल्पनालोक की यात्रा करने लगे किन्तु आचार्यवर के मन की थाह कोई नहीं पा सका। सब शांत, स्तब्ध और मौन थे। उत्सुकता को चरम सीमा तक पहुंचाकर गुरुदेव ने कहा—'आचार्य भिक्षु ने अपने प्रिय शिष्य भारीमालजी से कहा—यदि कोई व्यक्ति तुम्हारी ईर्या समिति में चूक या गलती बताए तो तुम्हें प्रायश्चित्त स्वरूप एक तेला करना होगा। मैं महाश्रमण के लिए तेले की बात तो नहीं कहता किन्तु इतना अवश्य कहना चाहूंगा कि आज समाज में सुविधावाद अपने पांव पसारता जा रहा है। उसका प्रभाव साधु समाज पर भी आ रहा है। इस दृष्टि से मैं एक प्रयोग करना चाहता हूं। यदि कोई व्यक्ति यह कह दे कि मुदित मुनि सुविधावादी बन रहे हैं अथवा तुम्हारी कोई सुविधावादी प्रवृत्ति मेरे ध्यान में आ जाए तो उसके प्रायश्चित्त स्वरूप तुम्हें तीन दिन तक तीन-तीन घण्टे खड़े-खड़े ध्यान करना होगा।'

महाश्रमणजी ने बद्धांजलि होकर आचार्यवर द्वारा प्रदत्त इस उपहार को स्वीकार किया। महान होते हैं वे आचार्य जो अपने प्रिय शिष्यों को इस प्रकार कसौटी पर कसते हैं। महान होते हैं वे शिष्य जो अपने गुरु के कड़े से कड़े निर्देश को अपना सौभाग्य समझकर स्वीकार करते हैं और महान होता है वह धर्मसंघ जहां ऐसे आध्यात्मिक प्रयोग होते रहते हैं। आचार्यवर के इस नए प्रयोग से पूरे धर्मसंघ को सक्रिय प्रशिक्षण प्राप्त हुआ।

महाश्रमणजी की तीसरी स्वतंत्र यात्रा हुई दिल्ली के उपनगरों की। देशाटन करने से आदमी का ज्ञान बढ़ता है, अनेक लोगों से संपर्क होता है और अनेक नई चीजें दृष्टिपथ में आती हैं। इन बिन्दुओं को मध्यनजर रखते हुए उन्होंने चालीस दिनों तक उपनगरों में व्यवस्थित क्रम से भ्रमण किया। संघ की संभाल के लिए श्रम की कभी परवाह नहीं की। यात्रा में कल्पना से भी अधिक कार्य किया।

श्रम पर अंकुश

महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी श्रममय जीवन जीकर श्रमण शब्द को

सार्थक कर रहे थे किन्तु जहां अति होती है वहां अंकुश भी लगाना पड़ता है। महाश्रमणजी की श्रमशीलता पर गुरुदेव तुलसी को विश्राम का अंकुश लगाना पड़ा। एक दिन शासनसेवी मुनिश्री बालचंदजी ने गुरुदेव से निवेदन किया—'गुरुदेव! कल रात महाश्रमणजी पौने बारह बजे तक काम कर रहे थे। ये सोने में प्रायः विलम्ब कर देते हैं।' गुरुदेव ने तत्काल उनको बुलाया और कहा—'सोने में इतना विलम्ब क्यों करते हो? यदा कदा की बात अलग है। अन्यथा स्वास्थ्य के लिए इतना जागना अच्छा नहीं। समय पर नींद लेना भी अपेक्षित होता है। यदि महावीर जैसा शरीर बना लो तो कोई आपत्ति नहीं, फिर भले ही नींद मत लेना।'

पुनः महाश्रमण पद पर

वि.सं. २०५१ माघ शुक्ला षष्ठी (५ फरवरी १९९५) का दिन। दिल्ली में समायोजित आचार्य महाप्रज्ञ का पदाभिषेक समारोह। आचार्यश्री तुलसी ने नौ वर्ष पहले मुनि मुदितकुमारजी को युवाचार्य महाप्रज्ञ का अन्तरंग सहयोगी बनाया और लगभग साढ़े पांच वर्ष पहले महाश्रमण पद पर प्रतिष्ठित किया। चूंकि अब युवाचार्य महाप्रज्ञ आचार्य बन गए इसलिए गणाधिपति गुरुदेव तुलसी ने मुनि मुदितकुमारजी को आचार्य महाप्रज्ञ के अन्तरंग सहयोगी के रूप में पुनः महाश्रमण पद पर प्रतिष्ठित किया। वह नियुक्ति पत्र इस प्रकार है—

अर्हम्

महाश्रमण मुनि मुदितकुमारजी आचार्य महाप्रज्ञ के गण संचालन के कार्य में सतत सहयोगी रहे तथा स्वयं गण-संचालन की योग्यता विकसित करे। इसके लिए अवशेष जो करणीय है, वह उचित समय पर आचार्य महाप्रज्ञ करेंगे।

संवत २०५१, माघ शुक्ला ६ **गणाधिपति तुलसी**
५ फरवरी १९९५, रविवार
अध्यात्म साधना केन्द्र, नई दिल्ली

यह पत्र सौंपते समय गुरुदेव ने कहा—'खूब काम करो और अच्छे ढंग से करो। इसमें कोई पद नहीं है और कहने को कोई बात बाकी नहीं है।'

मुदित को उठाओ

महाश्रमणजी को गुरुदेव तुलसी की सन्निधि में रहने का, सेवा करने का और अनेक बातें सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। वे रात्रि में प्रायः गुरुदेव के पास ही शयन करते थे। कई बार जब गुरुदेव की नींद खुल जाती। तब प्रायः महाश्रमणजी स्वयं ही उठ जाते। कभी नींद नहीं खुलती तो गुरुदेव अपने पार्श्व में स्थित मुनि से कहते—'मुदित को उठाओ।' फिर महाश्रमणजी पूज्यप्रवर के पास जाते, कभी गुरुदेव को कायोत्सर्ग कराते तो कभी स्वाध्याय कराते। इस प्रकार रात्रि में भी गुरुदेव की सेवा का अवसर उन्हें मिलता रहता।

अयाचित आशीर्वाद

सन १९९३ का प्रसंग है। सांवत्सरिक क्षमायाचना के प्रसंग में गुरुदेव तुलसी ने कहा—'यह हमारा छोटा-सा महाश्रमण मुदित है। रात को मैं जागकर बैठा तो यह भी आकर बैठ गया। मैंने कहा—मुझे तो नींद नहीं आ रही है इसलिए बैठ गया। तुम क्यों बैठ गए? छोटा-सा साधु है। इतनी-सी उम्र में महाश्रमण बन गया। है न आश्चर्य की बात! तो महाश्रमण मुदित इस अवसर पर मैं तुमसे भी खमतखामणा करता हूं। बढ़ो, खूब काम करो और आनन्द से रहो।'

एक दिन गुरुदेव ने प्रवचन के दौरान प्रश्न किया—'साधु कैसा हो?' फिर स्वयं ने ही समाधान दिया—'मुदित मुनि जैसा हो।' एक बार यह भी कहा—'महाश्रमण बहुत भला है, बहुत विनीत है। कुछ भी कह दो, इतना सरल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। मैं कहता हूं कि साधु हो तो ऐसा हो।'

एक बार गुरुदेव तुलसी ने महाश्रमणजी को याद किया। संभवतः गुरुदेव कुछ लिखाना चाहते थे किन्तु उनके पास डायरी-पैन नहीं था। तब पूज्यप्रवर ने कहा—'हमारे पास आओ तब डायरी-पैन साथ रखा करो।' उस दिन से वे जब भी गुरुदेव के पास जाते, डायरी-पैन अपने पास रखते। उनका यह क्रम वर्षों तक चला।

सहज सेवाभावी शिष्य

१ फरवरी १९९४, सुजानगढ़ में गुरुदेव तुलसी ने अपनी डायरी में लिखा—'महाश्रमण मुदितकुमार मेरा सहज सेवाभावी शिष्य है। मैं भविष्य के लिए निश्चिन्त हूं।'

गुरुदेव तुलसी की शारीरिक सेवा से संबंधित कुछ कार्य ऐसे थे जिन्हें प्रायः महाश्रमण मुदितकुमारजी ही संपादित करते थे, जैसे—

- इनहेलर देना।
- पंचमी समिति के लिए पात्री डालना।
- हाथ का सहारा देना।
- आहार के बाद प्रायः प्रतिदिन उपासना करना।
- रात्रि-शयन गुरुदेव के पास करना।
- सप्ताह में एक बार विशेष विधि से कृत्रिम दांत साफ करना।

गुरुदेव तुलसी ने अपनी दैनन्दिनी में लिखा है—'मुनि मुदित अनाकांक्ष, अनासक्त, सहज और अपनी धुन में मस्त रहने वाला साधु है। इसके बारे में मेरी धारणा है कि यह संघ के लिए भावी आशा का केन्द्र बनेगा।'

मनोनयन युवाचार्य का

तेरापंथ धर्मसंघ एक आचार्य केन्द्रित धर्मसंघ है। यहां किसी का चुनाव नहीं होता। आचार्य स्वयं अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन करते हैं। इसमें किसी साधु-साध्वी या श्रावक समाज से सलाह-मशविरा नहीं किया जाता। आचार्य चाहे तो किसी से परामर्श ले सकते हैं अन्यथा अपने चिन्तन के आधार पर ही इस कार्य को संपादित करते हैं। यह कार्य प्रकट नियुक्ति के द्वारा भी हो सकता है और प्रच्छन्न लिखित पत्र के आधार पर भी किया जा सकता है। हमारे संघ में दोनों विधियों का प्रयोग होता रहा है। आचार्य जिसका नाम लिख देते हैं अथवा घोषित कर देते हैं, वह व्यक्ति संघ के लिए सिरमौर बन जाता है। आचार्य के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होता है—योग्य उत्तराधिकारी का मनोनयन करना। जब तक भावी व्यवस्था

नहीं होती है तब तक आचार्य के सिर पर संघ का ऋण रहता है। तेरापंथ के दशम अधिशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ बहुत जल्दी ही इस ऋण से मुक्त हो गए।

वि.सं. २०५४ में पूज्यप्रवर का प्रवास गंगाशहर में हो रहा था। सब कुछ सामान्य चल रहा था किन्तु अचानक कुछ अकल्पित घटित हो गया। आषाढ़ कृष्णा तृतीया के दिन देखते ही देखते अकस्मात गुरुदेव तुलसी की आंखें खुल गईं, स्पन्दन बन्द हो गया और शरीर निश्चेष्ट हो गया। गुरुदेव के महाप्रयाण के बाईस दिनों के बाद आषाढ़ शुक्ला दशमी (१५ जुलाई १९९७) को आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने यह घोषणा की—'आगामी भाद्रव शुक्ला द्वादशी संवत २०५४ दिनांक १४ सितम्बर १९९७ रविवार को मैं अपने उत्तराधिकारी/युवाचार्य के नाम की घोषणा करूंगा।' इस घोषणा के बाद सबके मन में एक ही जिज्ञासा उठ रही थी कि कौन होगा तेरापंथ का भावी भाग्यविधाता? ज्यों-ज्यों समय नजदीक आया, गंगाशहर में जन-सैलाब उमड़ने लगा।

वि.सं. २०५४ भाद्रव शुक्ला द्वादशी (१४ सितम्बर १९९७) का दिन। चौपड़ा हाई स्कूल में निर्मित विशाल प्रवचन पण्डाल। लाखों लोगों की उपस्थिति। जैसे ही घड़ी ने ग्यारह बजकर इक्कीस मिनट की सूचना दी, आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—'आओ, मुनि मुदितकुमार।' यह सुनते ही जयनिनादों से आकाश गूंज उठा। एक साथ उठे लाखों हाथों ने इस नाम का समर्थन किया। ऐसे अभूतपूर्व दृश्य को देखकर सब धन्यता का अनुभव कर रहे थे। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—'जिस समय दिल्ली में गुरुदेव ने मेरा पदाभिषेक किया, उस समय महाश्रमण मुदितकुमार को प्रदत्त पत्र में लिखा था—'इसके लिए अवशेष जो करणीय है वह उचित समय पर आचार्य महाप्रज्ञ करेंगे।' मुझे हर्ष है कि गुरुदेव का जो इंगित था, आज मैंने उसे क्रियान्वित कर दिया।

वि.सं. २०५३ कार्तिक कृष्णा अमावस्या। दीपावली के दिन आचार्यवर ने गुरुदेव तुलसी की प्रत्यक्ष साक्षी में एक नियुक्ति पत्र लिखा था। उसका परिषद् के बीच वाचन किया और नव मनोनीत युवाचार्य के

हाथों में थमा दिया। १० सितम्बर १९९७ को युवाचार्य नियुक्ति के संदर्भ में एक और नियुक्ति पत्र लिखा। वह इस प्रकार है–

तेरापंथ भवन — वि.सं. २०५४, भा. शु. ८
गंगाशहर — बुधवार, १०/९/९७

अर्हम्

ॐ नमो भगवते ऋषभाय
ॐ नमो भगवते पार्श्वनाथाय
ॐ नमो भगवते महावीराय

श्री भिक्षु भारीमाल ऋषिराय जयाचार्य मघवा माणक डालचन्द कालू तुलसी गुरुभ्यो नमः। मैं तेरापंथ के दशम आचार्य के दायित्व का निर्वाह कर रहा हूं। अब मैं अनुभव कर रहा हूं–मुझे आचार्य के सर्वोत्तम और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य का अनुपालन करना चाहिए। तेरापंथ धर्मसंघ, भिक्षुशासन की गुरु-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति करनी चाहिए। मैं मेरे परम आराध्य गुरुदेव तुलसी के साक्ष्य से मुनि मुदितकुमार को अपने उत्तराधिकारी के रूप में युवाचार्य पद पर नियुक्त करता हूं। मुझे विश्वास है–यह अध्यात्मनिष्ठा, अनुशासन, विनम्रता और आचारनिष्ठा के साथ भिक्षु शासन की गरिमा को बढ़ाता रहेगा।

आचार्य महाप्रज्ञ

युवाचार्य परम्परा में एकमात्र युवाचार्य महाश्रमण ही ऐसे युवाचार्य हुए जिनके लिए दो नियुक्ति पत्र लिखे गए। नियुक्ति पत्र प्रदान के बाद अगला कार्य था पछेवड़ी ओढ़ाना। आचार्यप्रवर ने स्वस्तिक चिह्न युक्त साध्वियों द्वारा तैयार की गई कलात्मक पछेवड़ी पहले स्वयं ओढ़ी और फिर नव मनोनीत युवाचार्य को ओढ़ा दी। युवाचार्यश्री के साथ दो नाम जुड़े हुए थे–महाश्रमण और मुदितकुमार। हमारी परम्परा रही है कि आचार्य/युवाचार्य बनने के बाद संघ में उस नाम का कोई साधु हो तो नाम बदला जा सकता है। यदि उस नाम का साधु न हो तो भी नाम बदला जा सकता है। आचार्यवर ने इनका नाम महाश्रमण घोषित किया। अब वे युवाचार्य मुदितकुमार नहीं, युवाचार्य महाश्रमण बन गए। अब तक महाश्रमण एक पद

था, वह नाम बन गया। आचार्यप्रवर ने अपने वाम पार्श्व में स्थित पट्ट पर उन्हें बैठने का निर्देश दिया और आशीर्वाद देते हुए कहा—'तुम जिस कार्यक्षेत्र में आए हो, जिस कार्यक्षेत्र में मैंने तुम्हारा चुनाव किया है, जो दायित्व सौंपा है, मुझे विश्वास है कि तुम निष्ठा और शक्ति के साथ भिक्षु शासन की परम्परा को अविच्छिन्न बनाए रखने में अपने कण-कण का नियोजन करोगे और हमारे शासन की जो गौरवशाली परम्परा है, उस परम्परा को आगे बढ़ाने में निरन्तर गतिशील और चिन्तनशील रहकर उसकी क्रियान्विति में सहयोग देते रहोगे, सतत सचेष्ट रहोगे।'

आचार्यप्रवर द्वारा युवाचार्य मनोनयन की विधिवत परिसम्पन्नता और मंगल आशीर्वचन के बाद पण्डाल में समुपस्थित चतुर्विध धर्मसंघ ने युवाचार्यश्री महाश्रमणजी की अभिवंदना की। सभी के चेहरे हर्ष से प्रफुल्लित हो रहे थे। युवाचार्य महाश्रमण के रूप में उन्होंने संघ के नाम भावपूर्ण प्रथम वक्तव्य दिया। वह अविकल रूप में इस प्रकार है—

मैं अपने वक्तव्य के प्रथम बिंदु में तेरापंथ के विलक्षण आचार्य, तेजस्वी आचार्य, सप्तम आचार्य पूज्यवर डालगणी के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं। आज से ठीक ८८ वर्ष पूर्व वि. सं. १९६६ में भाद्रव शुक्ला १२ यानी आज के दिन उन्होंने महाप्रयाण किया था। तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक महामना भिक्षु जिनके नाम के प्रति और व्यक्तित्वयुक्त नाम के प्रति मेरे मन में आकर्षण रहा है, आकर्षण है और उनके नाम स्मरण से ही समस्या का समाधान मैंने अनुभूत किया है, जिनके द्वारा प्रवर्तित धर्मसंघ में मुझे दीक्षित होने का अवसर प्राप्त हुआ, उस महापुरुष को मैं नमन करता हूं। तेरापंथ में सात युवाचार्य हुए हैं, मैं उन सभी को आदर और श्रद्धा के साथ नमन करता हूं, स्मरण करता हूं। मैं चाहता हूं कि सभी युवाचार्यों के युवाचार्य काल के संस्मरणों से मुझे प्रेरणा मिले और उनके आदर्श मेरे लिए आलोक स्तंभ बने रहें।

परमाराध्य गणाधिपति श्री तुलसी जिनके चरणों में निकट बैठने का, जिनकी सेवा करने का, जिनसे वात्सल्य प्राप्त करने का और कभी-कभी उपालम्भ प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। गुरुदेव ने मेरे प्रति कितना

विश्वास किया और कितनी स्पष्ट बातें कई बार मेरे से वे कर लेते थे। जिनकी मुझे आशा भी नहीं थी। उन्होंने मेरे निर्माण के लिए बहुत श्रम किया। मैं अंतर्मन से आज उनका स्मरण करता हूं।

पूज्य गणाधिपति गुरुदेव का एक वाक्य लगभग गुप्त है। आज मैं उसे बता देना चाहता हूं। एक बार किसी प्रसंग में उन्होंने कहा था। उसका भाव मुझे याद है और वह भावयुक्त वाक्य था—'मैं ऊपर जाकर भी ध्यान रखूंगा।' यह वाक्य मेरे लिए बड़ा मूल्यवान है। महाश्रमणी साध्वी प्रमुखाश्रीजी और मैं—हम दोनों ही सेवा में बैठे थे। उस समय गुरुदेव ने फरमाया था, वही वाक्य आज मुझे याद आ रहा है। मैं उनके प्रति आभार ज्ञापन करूं, यह छोटी बात होगी। शिष्य और गुरु का इतना तादात्म्य संबंध बन जाता है फिर आभार, कृतज्ञता की बातें कुछ हल्की सी लगने लगती है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी! वर्षों से आपके श्री चरणों में बैठने का, ज्ञान प्राप्त करने का और संघीय कार्यों में संलग्न रहने का आपकी कृपा से और गुरुदेव की कृपा से मुझे अवसर प्राप्त होता रहा। आप मेरे धर्म गुरु भी हैं, धर्माचार्य भी हैं और आप विद्या गुरु भी हैं। आपके चरणों में बैठकर मुझे यत्किंचित् सीखने का मौका मिला है, जानने का मौका मिला है और अनुभवों को बढ़ाने का मौका मिला है। मेरी मंगल कामना है कि बहुत लंबे काल तक वह ज्ञान प्राप्त करने का, अनुभव प्राप्त करने का और वात्सल्य प्राप्त करने का अवसर मुझे मिलता रहे।

मैं छोटा सा बच्चा था। संसारपक्षीया मां के पास रहता था। मेरी मां का भी मेरे ऊपर उपकार है। सांसारिक उपकार ही नहीं, धार्मिक उपकार भी है। मेरी मां ने मुझे बचपन में कहा था—बेटा! तुम साधुओं के पास जाया करो। मां मुझे अपने साथ साधुओं के पास ले जाती। मेरा साधुओं के पास जाने का क्रम शुरू हो गया। कुछ सीखने, सुनने का क्रम शुरू हो गया। मेरे मन में साधुओं के प्रति, साधुओं के ठिकाने के प्रति आकर्षण पैदा हो गया। अतः मैं इस क्षण अपनी संसारपक्षीया मां को भी उपकारी के रूप में याद कर रहा हूं। आज भी वे विद्यमान हैं।

मेरा धर्म के प्रति आकर्षण बढ़ता गया। मुझे स्मरण हो रहा है स्वर्गीय

मुनिश्री सोहनलालजी स्वामी (चाड़वास) का जिनसे मुझे वात्सल्य मिला, जिन्होंने मुझे वैराग्य की बात बताई और मुझे तत्त्वज्ञान सिखाने का प्रयास किया। मैं उनके प्रति भी कृतज्ञता का भाव व्यक्त कर रहा हूं। मुनिश्री सुमेरमलजी (लाडनूं) जिन्होंने मुझे गुरु आज्ञा से दीक्षित किया। पहले मेरे वैराग्य भाव को पुष्ट किया और मुझे संघीय संस्कार देने का प्रयास किया। मैं उन्हें भी कृतज्ञता के साथ यहां खड़ा-खड़ा स्मरण कर रहा हूं।

मैं प्रथम मंगलकामना अपने प्रति यह करना चाहता हूं कि मेरे मन में सत्य के प्रति सदा भक्ति भाव बना रहे, समर्पण का भाव बना रहे और अंतिम श्वास तक ही नहीं, केवलज्ञान की प्राप्ति तक बना रहे। वह भाव पराकाष्ठा तक पहुंचता रहे।

मैं दूसरी मंगलकामना यह करता हूं कि गुरु का वात्सल्य भाव मुझे मिलता रहे और मेरी क्षमताओं का विकास होता रहे। मैं गुरुभक्ति और गुरु आज्ञा को बहुत महत्त्व देता हूं, भविष्य में भी देता रहूंगा। मेरे मन में अपने गुरु आचार्यश्री महाप्रज्ञ के प्रति परम भक्ति का भाव है। वह और पुष्ट होता रहेगा। मैं चाहता हूं उनकी दृष्टि की अनुपालना के लिए मुझे बड़े से बड़ा कष्ट भी झेलना पड़े तो वह भी सहर्ष स्वीकार है।

मैं तीसरी मंगलकामना करता हूं स्वास्थ्य देवता से। उनसे भी मुझे हमेशा अभीष्ट अनुकूलता प्राप्त होती रहे। उस अनुकूलता के आधार पर कार्य करने में ज्यादा सक्षमता प्राप्त होगी।

मैं चौथी मंगल कामना करता हूं कि मेरी आध्यात्मिक निर्मलता विद्यमान रहे।

मैं पांचवीं मंगलकामना करता हूं कि अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहूं। निष्ठा के साथ कर्त्तव्य का पालन करता रहूं। मुझे पूरे धर्मसंघ से स्नेह, वात्सल्य और यथासंभव प्रशिक्षण प्राप्त होता रहा है। तेरापंथ धर्मसंघ के प्रति मेरे मन में आकर्षण का भाव है। मैं चतुर्विध धर्मसंघ के वात्सल्य का भागी बना हूं और मुझे भविष्य में भी वात्सल्य और विनय प्राप्त होता रहे।

यह कांटों का ताज कहलाने वाला नेतृत्व का दायित्व परम प्रभु के

प्रताप से, गुरु प्रसाद से और अध्यात्म प्रभाव से मेरे लिए सुमनों का ताज बना रहे। यह समस्या नहीं, सहज समाधान बना रहे।

मैं इन क्षणों में पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करूं, यह मुझे अभीष्ट नहीं है। आपका आशीर्वाद आपकी शक्ति और आपकी प्रेरणा सदा मुझे मिलती रहे।

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी! वर्षों से मेरा आपसे यत्किंचित् न्यूनाधिक मात्रा में संपर्क रहा। पूज्य गणाधिपति गुरुदेव ने हम दोनों की एक साथ महाश्रमण, महाश्रमणी के रूप में नियुक्ति की थी। हम दोनों को सह चिन्तन, विचार विनिमय के लिए आदेश भी फरमाया था। उस आदेश की अनुपालना स्वरूप अनेक बार मैंने आपका सान्निध्य भी प्राप्त किया है। आपसे मुझे मातृवात्सल्य प्राप्त हुआ है, प्रेरणा मिलती रही है विकास के लिए। आपका पूर्ण सहकार, पूर्ण स्नेह, पूर्ण वात्सल्य यथासंभव यथा औचित्य मुझे हमेशा मिलता रहे, उससे मुझे संबल प्राप्त होगा, ऊर्जा प्राप्त होगी, ऐसी आशा है।

मैं अन्त में अपने आराध्य आचार्यवर के प्रति अपनी सहज श्रद्धा समर्पित करना चाहता हूं और पूज्यवर! संभव हो तो एक संकल्प आप भी कराएं। वह यह कराएं कि आप लंबे काल तक अपने युवाचार्य को और पूरे धर्मसंघ को प्रेरणा प्रदान करते रहें।

कार्यक्रम की संपन्नता के बाद उन्होंने आचार्यवर के निर्देश से उपस्थित साधु-साध्वियों को ग्रास दिया। फिर आचार्यवर के साथ पुनः तेरापंथ भवन पधार गए।

पट्ट का उपयोग करो

वि.सं. २०५४ पौष कृष्णा चतुर्थी (१८ दिसम्बर १९९७) भीनासर का तेरापंथ भवन। सर्दी का मौसम। रात्रि में भयंकर सर्दी। जमीन मानो बर्फ बन गई। युवाचार्यश्री ने प्रथम बार गत्ते का उपयोग किया। प्रातःकाल जब आचार्यश्री के पास पधारे तब पूज्यप्रवर ने पूछा—'रात्रि में सर्दी बहुत थी। तुम्हें भी ठण्ड लगी होगी।'

युवाचार्यवर—'सन्तों ने गत्ता लगा दिया था।'

आचार्यवर—'अब गत्ता क्यों? युवाचार्य बन गए हो, पट्ट का उपयोग करो।'

गंगानगर अंचल में

गुरुदेव तुलसी की इच्छा थी कि महाश्रमण मुदित गंगानगर अंचल की यात्रा करे। उनकी विद्यमानता में तो यात्रा नहीं हो सकी किन्तु बाद में आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने उनको यात्रा करने का निर्देश दिया।

वि.सं. २०५६ माघ शुक्ला त्रयोदशी (१७ फरवरी २०००) का दिन। तारानगर का विशाल पंचायत भवन। आचार्यश्री महाप्रज्ञ के मंगल आशीर्वाद के साथ यात्रा का शुभारंभ हुआ। इस यात्रा का नाम अणुव्रत-प्रेक्षायात्रा रखा गया। यात्रा का मुख्य उद्देश्य था—आध्यात्मिक एवं नैतिक चेतना का जागरण, अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान व जीवन-विज्ञान का व्यापक प्रचार-प्रसार और संघीय संभाल। आचार्यप्रवर ने इस यात्रा में मुनिश्री रवीन्द्रकुमारजी आदि दस सन्तों, साध्वी जिनप्रभाजी व मधुस्मिताजी आदि आठ साध्वियों, समण स्थितप्रज्ञजी आदि चार समण और समणी मल्लिप्रज्ञाजी आदि चार समणियों को युवाचार्यश्री के साथ भेजा।

यह यात्रा तारानगर से नोहर, हनुमानगढ़, अबोहर होती हुई फाजिल्का पहुंची। वहां से वापिस आते समय युवाचार्यप्रवर 'रूपनगर चौकी' पधारे। सीमा सुरक्षा का अवलोकन किया। भारतीय सीमा की सुरक्षा के लिए लोहे के सघन तारों से वहां पूरी सुरक्षा लाइन बनी हुई है। सूर्यास्त होते ही पूरी सुरक्षा पंक्ति में विद्युत प्रवाहित कर दी जाती है। वहां जानकारी दी गई कि एक दिन भी इस विद्युत प्रवाह को बन्द कर दिया जाए तो पूरे भारत वर्ष में उस विद्युत की सप्लाई हो सकती है और इतना खर्च बच सकता है जिससे पूरा देश शिक्षित हो जाए। तब युवाचार्यश्री ने कहा—'शिक्षा से पहले सुरक्षा जरूरी है।' कुछ सन्त भारत की सीमान्त तक गए। बालमुनि विश्रुतकुमारजी आदि कुछ संतों ने पाक-सीमा का भी स्पर्श किया। यहां से प्रस्थान कर युवाचार्यप्रवर श्री गंगानगर पधारे। इस यात्रा का सर्वाधिक लम्बा प्रवास यहीं हुआ। कार्यक्रमों की दृष्टि से भी यह क्षेत्र अग्रणी रहा। कभी-कभी तो यहां

एक दिन में आठ-नौ कार्यक्रम भी हो जाते। यहां आचार्यवर के निर्देश से ६ अप्रैल २००० को दीक्षा समारोह का आयोजन हुआ। तेरापंथ इतिहास में संभवतः प्रथम बार दीक्षा-समारोह की पूरी व्यवस्था का जिम्मा किसी जैनेतर संस्था ने निर्वहन किया। वह संस्था है—तपोवन प्रन्यास। इस संस्था में मानसिक दृष्टि से दुर्बल एवं मंदबुद्धि छात्र-छात्राओं के विकास तथा उनके शिक्षण का क्रम चलता है।

पहली दीक्षा

इस कार्यक्रम में उपस्थित हजारों लोग तेरापंथ संघ का भव्य दीक्षा समारोह देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे। तभी जसोल (मारवाड़) निवासी मुमुक्षु किशोर मुनि वेश में मंच पर उपस्थित हुआ। युवाचार्यप्रवर ने मुमुक्षु किशोर के परिवारिकजनों से लिखित व मौखिक स्वीकृति प्राप्त की। तत्पश्चात पट्ट से नीचे उतरे। उस समय पूज्य आचार्यवर चूरू में विराजमान थे। युवाचार्यश्री ने पूज्यप्रवर की दिशा में वंदना की। फिर मुमुक्षु किशोर को दीक्षित किया। नामकरण संस्कार के अन्तर्गत नवदीक्षित मुनि का नाम मुनि यशवन्तकुमार रखा। युवाचार्यश्री के लिए दीक्षा देने का यह प्रथम अवसर था। इस कार्यक्रम में दिग्विजयसिंहजी (भारत सरकार केन्द्रीय रेल राज्यमंत्री), हीरालाल इन्दौरा (खनिज राज्यमंत्री), संघ प्रवक्ता चन्दनमलजी बैद (पूर्व वित्तमंत्री, शिक्षामंत्री राजस्थान सरकार) आदि राजनेता समुपस्थित थे।

पूज्य गुरुदेव तुलसी ने चौंतीस वर्ष पहले इस अंचल की यात्रा की थी। आज भी अनेकों अजैन लोग गुरुदेव को याद करते हैं। कुछ लोगों ने बताया कि हम उस समय अणुव्रती बने थे, आज भी हम उन नियमों का पालन करते हैं। अनेक लोगों ने कहा—'चौंतीस वर्ष पहले बड़े गुरुजी आए थे। इतने लम्बे अन्तराल के बाद आप छोटे गुरुजी आए हैं। अब आप इतना लम्बा समय मत निकालना। हमें वापस जल्दी संभाल लेना।'

युवाचार्य बनने के बाद उनका अधिकांश समय जनसेवा में बीतने लगा। वे जनता को समय देने में आनन्द की अनुभूति करते हैं और अपना कर्त्तव्य भी मानते हैं। इस यात्रा के दौरान उन्होंने जनहिताय के लिए अनेक

कार्य किए। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

- प्रतिदिन प्रातःकाल और रात्रि में प्रवचन करना।
- कभी-कभी एक दिन में सात-आठ कार्यक्रम करना।
- कभी-कभी एक दिन में ८०/९० घरों का स्पर्श करना।
- जनभावना को रखने के लिए एक दिन में २५ कि.मी. का विहार करना।
- हजारों लोगों को व्यसन मुक्त बनाना।
- जनता को अहिंसा, नैतिकता और ईमानदारी का संदेश देना।
- बच्चों को जीवन-विज्ञान व संस्कार-निर्माण का प्रशिक्षण देना।
- व्यक्तिगत वार्तालाप के दौरान लोगों की समस्याओं को शांति के साथ सुनना और उनका यथोचित समाधान देना।

जनसेवा के लिए समर्पित

श्रीगंगानगर अंचल की यात्रा के दौरान युवाचार्यप्रवर पीलीबंगा पधारे। भयंकर गर्मी का समय था। सायं लगभग साढ़े चार बजे युवाचार्यश्री घरों में चरण-स्पर्श हेतु पधारे। सड़कें तप रही थी। पैर जल रहे थे। घरों की दूरी भी काफी थी। पुनः प्रवास-स्थल पर पधारे तब तक छह बज चुके थे। साधु-साध्वियों ने निवेदन किया—'पूज्यप्रवर! आपश्री को इतना श्रम नहीं करना चाहिए। आपका शरीर संघ का शरीर है इसलिए इस शरीर का भी ध्यान रखना चाहिए।' युवाचार्यश्री ने तत्काल कहा—'यह शरीर है किसके लिए? संघसेवा/जनसेवा के लिए ही तो समर्पित है।' सचमुच ऐसे परम परोपकारी लोगों के लिए ही तो कहा गया है—

निज हित छोड़ परायो साधै, मन धड़को नीं खावै।
इसा मिनख तो ईं धरती पर, गिण्या-चुण्या ही आवै।।

गुरुदेव उपालंभ देंगे

विहार के दौरान गर्मी के मौसम में साध्वियां प्रायः पानी लेकर युवाचार्यश्री के सामने जाती थीं। एक दिन अचानक युवाचार्यप्रवर ने

साध्वियों से कहा—'कल से पानी लेकर नहीं आना है।' साध्वियों ने यकायक निषेध का कारण जानना चाहा। तब युवाचार्यश्री ने कहा—'इस निषेध के पीछे दो कारण हैं। पहला कारण है कि साध्वियां कोमल होती हैं। उनसे इतना श्रम करवाना उचित नहीं लगता। दूसरा कारण यह है कि गुरुदेव तुलसी ने मुझे एक बार कहा था—मुदित! तुम कभी सुविधावादी मत बनना। इस प्रकार साध्वियों द्वारा लाया गया पानी पीना मुझे सुविधावाद लगता है। संभवतः गुरुदेव ऊपर बैठे-बैठे मुझे उपालंभ दे रहे होंगे कि मुदित! क्या तूं सुविधावादी बन गया? इसलिए अब पानी नहीं लाना है।'

साध्वी जिनप्रभाजी—'हम तो अपने कर्त्तव्य का निर्वाह कर रही हैं। यदि हम अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करेंगी तो गुरुदेव हमें भी उपालम्भ देंगे।'

युवाचार्यप्रवर—'आपको तो मैं निषेध कर रहा हूं इसलिए आप उपालम्भ की भागी नहीं बनेंगी।'

साध्वियां—'हम इस सेवा से वंचित रहना नहीं चाहतीं। कभी-कभी शिष्य का आग्रह भी स्वीकार करना पड़ता है।'

साध्वियों द्वारा अत्यधिक आग्रह करने पर युवाचार्यवर ने बड़ी मुश्किल से उन्हें पुनः पानी लाने की स्वीकृति प्रदान की। सचमुच, कितनी सरलता, कितनी सहजता और कितनी श्रमशीलता। सुविधावाद तो युवाचार्यश्री को छू तक नहीं पाया। उनका तो मानना है कि पदयात्रा हो और पसीना न आए तो फिर यात्रा कैसी? सच है, जहां श्रम की बूंदें गिरती हैं वहीं मोती निपजते हैं।

लगभग चार महीने की अणुव्रत-प्रेक्षा यात्रा संपन्न कर युवाचार्यश्री ने बीदासर में आचार्यवर के दर्शन किए। कार्यक्रम के दौरान आचार्यवर ने कहा—'आज मैं प्रसन्न हूं। सारा वातावरण प्रसन्न दिखाई दे रहा है। प्रसन्नता इस बात की है कि जिस लक्ष्य के साथ मैंने महाश्रमण को यात्रा में भेजा था, वह उसमें शत-प्रतिशत सफल हुआ है, सवा सौ प्रतिशत कहूं तो भी कोई आपत्ति नहीं है। श्री गंगानगर क्षेत्र के श्रावक समाज ने भी योजनाबद्ध तरीके से काम किया और अपना पूरा दायित्व निभाया है।

आज महाश्रमण आ गए। मेरा काम हल्का हो गया। मुझे इक्यासीवां वर्ष शुरू हो रहा है। अब तो मुझे और अधिक एकान्तवास की जरूरत है। अब लोगों से बात करना, किसी को शाबासी देना, किसी को उलाहना देना, यह धन्धा अब तुम संभालो। यह सुनते ही सबके चेहरों पर मुसकान तैर गई।

दुर्गम पहाड़ी यात्रा

२३ नवम्बर २००३ को अपराह्न ४.१० बजे चिंचवाड़ा से युवाचार्यवर ने खानदेश की यात्रा के लिए प्रस्थान किया। २५ दिनों में लगभग ३३२ किलोमीटर की यात्रा में ३२ गांवों का स्पर्श किया। इस यात्रा में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई समाज के प्रतिनिधियों ने तहेदिल से युवाचार्यवर का स्वागत किया। सैकड़ों विद्यार्थियों ने व्यसनमुक्ति का संकल्प किया व जीवन विज्ञान का प्रशिक्षण प्राप्त किया। मिलन के अद्भुत पलों में आचार्यप्रवर ने कहा—'मुझे प्रसन्नता है कि महाश्रमण ने २५ दिनों में हमसे पृथक् विहार करके भी कठोर जीवन जीया। हमारे पास छाले की बात आई तो मैंने कहा—नेपोलियन जब विजयी होकर आया, सैनिकों के घाव बहुत थे तो लोगों ने कहा—बहुत बढ़िया कपड़े से इनको ढक देना चाहिए। नेपोलियन ने कहा—'ये शूरता के घाव हैं। इनको ढको मत। खुला रहने दो।' मैंने भी पत्र में लिखा—'उन छालों को खुला ही रखो।' ११ संतों एवं ८ समणियों के साथ युवाचार्यवर की दुर्गम पहाड़ी रास्ते की यह यात्रा सानन्द सम्पन्न हुई।

मेवाड़ की पृथक् यात्रा

२५ नवम्बर २००७, मध्याह्न वेला। परम श्रद्धेय आचार्यवर से मंगल आशीर्वाद प्राप्तकर श्रद्धेय युवाचार्यवर ने पंचरत्न कॉम्पलेक्स (उदयपुर) से कानोड़, थामला, फतेहनगर, आकोला आदि क्षेत्रों की यात्रा के लिए पृथक् विहार किया। आचार्यवर ने अपने यशस्वी उत्तराधिकारी को प्रवास-स्थल से बाहर तक पधारकर भावपूर्ण वातावरण में विदा किया।

३० दिनों में २५ क्षेत्रों की संघ प्रभावक एवं श्रमपूर्ण यात्रा सम्पन्नकर युवाचार्यश्री २५ दिसम्बर को अणुविभा पधारे। आचार्य महाप्रज्ञ ने तुलसी साधना शिखर के विशाल प्रांगण में मंच पर कुछ कदम आगे आकर

युवाचार्य महाश्रमण की अगवानी की। गुरु शिष्य के भावपूर्ण मिलन को देखकर जनता भावविभोर हो गई। विनम्रता और वात्सल्य की निर्मल धारा ने जन-जन के मन को आनंद रस में निमज्जित कर दिया।

पूज्यप्रवर ने फरमाया—'महाश्रमण का अभिनन्दन सम्राट् का नहीं, श्रम का अभिवादन है। श्रम हमारी बपौती है, पैतृकता है। समाधान और सफलता का सूत्र है श्रम। महाश्रमण ने श्रम के मंत्र को पकड़ा। इसकी आराधना की और कर रहे हैं। महाश्रमण ने यात्रा में विलक्षण श्रम किया। कल ही नमाणा में चौदह वर्षों से चल रहा विवाद सुलझाया। महाश्रमण में एक कमी है। ये स्वास्थ्य और शरीर पर कम ध्यान देते हैं। श्रम और स्वास्थ्य का संतुलन बनाएं तो अच्छा काम हो सकता है।' इस प्रकार कम समय में अधिक क्षेत्रों की त्वरित गति से की गई यात्रा सानन्द-सोल्लास सम्पन्न हुई।

हेमड़ा मिल गया

आचार्य महाप्रज्ञ ने युवाचार्य महाश्रमण की श्रमनिष्ठा व समर्पणनिष्ठा के संदर्भ में २७ अप्रैल २००१ को श्रीडूंगरगढ़ में कहा—'आचार्य भिक्षु ने मुनि हेमराजजी की विलक्षण प्रतिभा एवं बेजोड़ समर्पण भाव को देखकर भारमलजी स्वामी से कहा—भारमल! तुम भाग्यशाली हो, तुम्हें हेमड़ा मिल गया। संभवतः आज आचार्य भिक्षु मुझे भी कह रहे होंगे—महाप्रज्ञ! तुम भी भाग्यशाली हो, तुम्हें भी महाश्रमण के रूप में हेमड़ा मिल गया।'

निर्णय सवा सौ प्रतिशत सही

२५/९/२००४ सिरियारी। युवाचार्य मनोनयन दिवस पर आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—'मुनि मुदितकुमार में एक वृत्ति है कि ये स्वार्थ के लिए नहीं सोचते हैं। इनमें करुणा है, लक्ष्य के प्रति समर्पण है और छोड़ने की भावना भी है। विनय, संघनिष्ठा, श्रमनिष्ठा, आचारनिष्ठा और कार्यकौशल आदि कसौटियों के आधार पर जब इन्हें कसा गया तो लगा कि इनमें योग्यता है। इन पर ध्यान देना चाहिए। महाश्रमण ने अपनी योग्यता से यह प्रमाणित कर दिया कि आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ ने जो निर्णय किया है वह सवा सौ प्रतिशत सही है। महाश्रमण ने अपने कर्त्तव्य का, दायित्व का इतना

अच्छा पालन किया है कि ८०% चाबियां इनके पास हैं। महाश्रमण सबकी भलाई करे जिससे केवल तेरापंथ की ही नहीं, औरों की भी चाबियां इनके हाथ में आ जाए।'

अच्छा भविष्य मिल गया

१७ मई २००५। युवाचार्यवर ने चवांलीसवें वर्ष में प्रवेश किया। आचार्यवर ने आशीर्वाद देते हुए फरमाया—'विनम्रता, सहिष्णुता, क्षमा, मनःप्रसाद, संतोष और सरलता। ये ऐसे गुण हैं जो केवल व्यक्तित्व का ही निर्माण नहीं करते अपितु समाज के लिए भी वरदान बन जाते हैं। युवाचार्य महाश्रमण में इन गुणों का विकास हुआ है। वही व्यक्ति हजारों लोगों को साथ लेकर चल सकता है जिसमें समता, ममता और क्षमता का विकास होता है। महाश्रमण में ये तीनों विद्यमान हैं और इनका विकास भी कर रहे हैं। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि मुझे एक योग्य उत्तराधिकारी मिला। जनता को और समाज को इस बात की प्रसन्नता है कि उन्हें एक और अच्छा भविष्य मिल गया।

प्रस्थान अद्भुत की ओर

सन २००६ में एक दिन आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—'आज से दो वर्ष पहले महाश्रमण का प्रवचन सुना था। इन दिनों भी सुन रहा हूं। अब ये काफी ऊपर उठ गए हैं। मन में बहुत प्रसन्नता हुई। मैं सोच रहा था कि यह बात कहूं या नहीं। कहीं महाश्रमण को नजर न लग जाए। अभी इनको बहुत विकास करना है किन्तु अब कभी मैं प्रवचन में न जाऊं तो कोई कठिनाई नहीं है। ये अच्छी तरह कर सकते हैं। इनकी वाणी में जोश है। ये विषय का प्रतिपादन भी अच्छा करते हैं। वीतराग स्तोत्र का एक श्लोक है—

शमोद्भुतोद्भुतं रूपं, सर्वात्मसु कृपाद्भुता।
सर्वाद्भुतनिधीशाय, तुभ्यं भगवते नमः।।

यह श्लोक महाश्रमण में घटित हो रहा है। महाश्रमण का उपशम अच्छा है। करुणा काफी अच्छी है। कई बातों में तो हमारे से भी आगे बढ़ रहे हैं। महाश्रमण का रूप भी सुन्दर है। महाश्रमण! तुम लक्ष्य बनाओ कि

मुझे अद्भुत की ओर जाना है।'

आज्ञाकारी कौन ?

सन् २००६ हिसार। आचार्यश्री महाप्रज्ञ जिन्दल हाउस (हिसार) से विहार कर जिन्दल स्कूल पधार रहे थे। मार्गवर्ती घरों व दुकानों में चरण-स्पर्श करने का कार्य युवाचार्यश्री संपादित कर रहे थे। एक युवक ने आचार्यवर से निवेदन किया—

'गुरुदेव! मेरा घर (कार की ओर इशारा करते हुए) वह सफेद कार खड़ी है वहां है। युवाचार्यश्री को चरण-स्पर्श हेतु भिजवाने की कृपा करें।'

आचार्यश्री—'जाओ, उस सफेद कार तक जाकर आ जाओ।'

युवाचार्यश्री उस कार तक पधारे तब ज्ञात हुआ कि भाई का घर थोड़ा और आगे है। वे उस भाई के अति आग्रह करने पर भी उसके घर नहीं पधारे, पुनः आचार्यवर के पास पधार गए।

युवक—'गुरुदेव! मेरे घर में चरण-स्पर्श नहीं हुआ, कृपा कराएं।'

आचार्यश्री—'अभी तो महाश्रमण जाकर आए हैं।'

युवाचार्यश्री—'मैं नहीं गया। चूंकि आपश्री की आज्ञा उस सफेद कार तक जाने की थी जबकि इस भाई का घर उससे थोड़ा और आगे था।'

आचार्यश्री—'जब थोड़ा ही आगे था तो फिर जाकर ही आ जाते।'

युवाचार्यश्री—'आपश्री फरमाएं तो मैं अभी जाकर आ जाता हूं।'

आचार्यश्री—'इस भाई का बहुत आग्रह है इसलिए जाओ। हम यहां तुम्हारा इन्तजार कर रहे हैं।'

युवाचार्यवर घर का स्पर्श कर पुनः पधारे और फिर आचार्यवर ने वहां से आगे प्रस्थान किया। कुछ दिनों बाद हांसी में आचार्यवर ने प्रवचन के दौरान इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए फरमाया—'हमसे कोई यह प्रश्न पूछे कि पूरे धर्मसंघ में सबसे अधिक आज्ञाकारी कौन? तो मैं कहूंगा—युवाचार्य महाश्रमण। जो युवाचार्य हैं, सर्वेसर्वा हैं, फिर भी कोई कार्य मेरी आज्ञा के बिना, मेरी दृष्टि के बिना नहीं करते हैं।'

आजीवन संघसेवा

२५/१/०७ गंगाशहर। सेवा का प्रसंग चल रहा था। युवाचार्यप्रवर ने निवेदन किया—'आचार्यप्रवर! मैं आपसे करबद्ध प्रार्थना करता हूं कि जैसे सब साधु-साध्वियों को सेवा का अवसर मिलता है वैसे ही मुझे भी मिलना चाहिए। अभी मैं अवस्था से युवा हूं, सेवा करने में सक्षम हूं। अवस्था आने के बाद पता नहीं क्या स्थिति रहे किन्तु आज तो मैं आपकी कृपा से पूरी तरह फिट हूं।'

आचार्यवर—'साधु-साध्वियों के लिए तो मात्र त्रैवार्षिक सेवा अनिवार्य है परन्तु तुम्हारे ऊपर तो आजीवन संघसेवा का दायित्व है।'

युवाचार्यवर—'पूज्यप्रवर! मेरा निवेदन मात्र औपचारिक नहीं है। मैंने आपश्री से कई बार यह भी निवेदन किया था कि मैं आपके साथ यात्रा करता हूं, आपके साधन के साथ चलता हूं लेकिन इस साथ चलने को मैं बहुत सार्थक नहीं मानता। मैं सार्थक तब मानूंगा जब साधन को चलाने में मेरा भी उपयोग किया जाएगा।'

आचार्यवर—'महाश्रमण ने कई बार साधन चलाने की कोशिश की परन्तु जैसे ही ये साधन चलाने का प्रयत्न करते हैं, सब साधु साधन छोड़कर दूर खड़े हो जाते हैं।'

युवाचार्यवर—'सचमुच, सन्तों की ओर से यह एक बड़ी बाधा है। मैं बहुत चाहकर भी अपनी इच्छा को मूर्त्त रूप नहीं दे पाता।'

आचार्यवर—'साधन चलाना सेवा का काम है किन्तु उससे भी बड़ी सेवा है शासन रूपी साधन को कुशलता से चलाना। तुम शासन के रथ को अच्छी तरह संचालित करते रहो। यह सबसे बड़ी सेवा है।'

युवाचार्यवर—'पूज्यश्री! कभी-कभी मेरे मन में आता है कि अभी मैं युवा हूं, शारीरिक रूप से सक्षम हूं। ऐसी स्थिति में मैं खाली हाथ क्यों चलूं? कुछ पुस्तक-पन्नों और उपकरणों का बोझ अपने कन्धों पर उठाकर चलूं।'

आचार्यवर—'जो बोझ हमारी परम्परा से चलता आया है, वह बोझ मैं

उठा रहा हूं और तुम्हें भी उठाना है इसलिए तुम अपने कन्धों को मजबूत रखो।'

युवाचार्यवर—'मैं पूज्यश्री की अमृतमयी प्रेरणा को शुभाशीष के रूप में स्वीकार करता हूं।'

महाश्रमिक : महातपस्वी

१०/७/२००७, उदयपुर। आचार्य महाप्रज्ञ ने कहा—'ये (महाश्रमण) धर्मसंघ के युवाचार्य हैं। तेरापंथ का युवाचार्य होना बड़े भाग्य की बात है। महाश्रमण युवाचार्य होने के साथ-साथ महाश्रमिक भी हैं।

हमारे धर्मसंघ में तपस्या को बहुत महत्त्व दिया जाता है। कितने ही भाई-बहन बेला, तेला, अठाई और मासखमण तथा इससे भी ऊपर की तपस्या करते हैं। बड़ी तपस्या करने वाले तपस्वी कहे जाते हैं। लेकिन मैंने महाश्रमण जैसा तपस्वी आज तक दूसरा नहीं देखा। ये उपवास बहुत बार करते हैं। बड़ी तपस्या ये करते भी नहीं और हम कराते भी नहीं हैं। इनकी सहनशीलता और श्रमशीलता इतनी ज्यादा है कि शब्दों में कही नहीं जा सकती। हम केवल बाह्य तप को देखते हैं। अंतरंग तप की दृष्टि से मूल्यांकन करें तो महाश्रमण से बड़ा तपस्वी आज पूरे धर्मसंघ में मुझे कोई दिखाई नहीं देता। इसलिए आज से लोग इन्हें युवामनीषी कहें या नहीं, महातपस्वी महाश्रमण जरूर कहें। इनका महातप हमारे धर्मसंघ के लिए गौरव का विषय है और मेरे लिए तो परम आनन्द का विषय है।'

वह या यह

सन् २००८ जयपुर। एक बार युवादृष्टि में युवाचार्यश्री का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ। उसमें उन्होंने जनता को भगवान बताया था। उस साक्षात्कार का कुछ अंश स्वयं आचार्यवर ने पढ़कर सुनाया, वह इस प्रकार है—'जनता भगवान के तुल्य होती है। जनता की सेवा करना भगवान की सेवा करना है। यह मेरा मंतव्य है। इससे मुझे कर्म निर्जरा का लाभ भी मिलता है, सेवा भी होती है और दायित्व का निर्वाह भी होता है।'

आचार्यवर—'महाश्रमण पहले बहुत एकान्तवासी थे। अकेले रहना,

अपने आपमें रहना ही इनको पसन्द था। गुरुदेव तुलसी को और मुझे एक ही बात की चिन्ता थी कि ये ज्यादा अपने में ही रहते हैं किन्तु अब तो पूरा उल्टा हो गया, रूपान्तरण हो गया। अब भीड़ भगवान बन गई। एक बार मैंने गुरुदेव से निवेदन किया था कि गुरुदेव! आपने मुनि मुदितकुमारजी को मेरे सचिव के रूप में नियुक्त तो किया है किन्तु एक जटिल समस्या है कि ये अपने आपमें ही रहते हैं।'

गुरुदेव ने कहा—'धीरे-धीरे ठीक हो जाएगा।' अब जब मैं लोगों के बीच इनको इतना समय लगाते हुए देखता हूं तो मैं इन्हें रोकता हूं कि इतना समय मत लगाओ। कभी-कभी तो सन्देह हो जाता है कि वह मुदित कौन था और यह मुदित कौन है?

प्राणवान व्यक्तित्व

कुछ वर्षों से युवाचार्य महाश्रमण रात्रि में शयन से पूर्व प्रतिदिन आचार्यप्रवर की वैयावृत्त्य करते थे। एक बार रात्रि में जब वे वैयावृत्त्य कर रहे थे तब आचार्यश्री ने कहा—'महाश्रमण जब वैयावृत्त्य करते हैं तब पैरों में झनझनाहट-सी शुरू हो जाती है। ऐसा तभी होता है जब प्राणवान हाथों का स्पर्श होता है। सचमुच, युवाचार्य महाश्रमण के हाथ प्राणवान हैं।'

युवाचार्यप्रवर की प्राणवत्ता के तीन मुख्य आधार बिन्दु हैं—सत्य, श्रद्धा और तप। युवाचार्य महाश्रमण प्राणवान हैं क्योंकि उनके पास सत्य का बल है। उनके मन में नैतिक मूल्यों के प्रति, प्रामाणिकता के प्रति, सचाई के प्रति जो निष्ठा है, वह बेजोड़ है। उनका मानना है कि जीवन में कुछ कठिनाई आएगी तो उसे झेलेंगे किन्तु सचाई के पथ पर चलेंगे। उन्होंने अपने ग्रन्थ शिक्षा-सुधा में लिखा है—

नो चिन्ता सत्यभक्तानां, नो दुःखं सत्यसेवने।
नो भयं सत्यपुत्राणां, सत्यश्रद्धा बलीयसी।।

सत्य-भक्तों को चिन्ता नहीं। सत्य के आचरण में दुःख नहीं। सत्य-पुत्रों को भय नहीं। सत्य-श्रद्धा में बहुत बल होता है।

युवाचार्यश्री इस बात के लिए बहुत जागरूक रहते हैं कि कहीं मुझे

किंचित मात्र भी असत्य का दोष न लग जाए इसलिए वे प्रायः निश्चय-कारिणी भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। उनके प्रायः हर वक्तव्य में आसरै, लखावै, संभवतः, शायद, लगभग जैसे शब्दों का प्रयोग सुनने को मिल जाता है। वे सत्यभाषा के साथ-साथ मधुरभाषी, परिमितभाषी और परीक्ष्यभाषी हैं। वे हर एक अक्षर को तोलकर बोलते हैं। संस्कृत साहित्य में कहा गया है—**'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता'** जो परिमित और सारपूर्ण बोलता है वह वाक्पटु होता है। वे अपेक्षा और उपयोगिता को समझकर बोलते हैं। आवश्यक हो तो दो घंटे भी बोल लेते हैं और अपेक्षा न हो तो वे दो मिनट भी नहीं बोलते हैं। इससे न तो उनके समय का व्यय होता है और न ही अनावश्यक ऊर्जा का व्यय होता है इसीलिए वे प्राणवान हैं।

युवाचार्य महाश्रमण प्राणवान हैं क्योंकि उनके पास श्रद्धा का बल है। श्रद्धा का अर्थ है—लक्ष्य के साथ तादात्म्य या एकात्मकता स्थापित कर लेना। आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने कहा—**'श्रद्धास्वादो न खलुरसितो हारितं तेन जन्म'** जिसने श्रद्धा का स्वाद नहीं चखा, वह जन्म ही हार गया अर्थात् उसका जन्म व्यर्थ हो गया। अपने प्रति, अपने लक्ष्य के प्रति और पथदर्शक के प्रति श्रद्धा का भाव जीवन को सरस बनाए रखता है। जीवन में अनेक उतार-चढ़ाव आ सकते हैं किन्तु श्रद्धालु व्यक्ति को परिस्थितियां बाध्य नहीं कर सकती। श्रद्धा के साथ शक्ति का योग हो तो विशेष निष्पत्ति आ सकती है। श्रद्धा जीवन का बहुत बड़ा आश्रय है। जिसके प्रति श्रद्धा होती है, उसके प्रति सहज समर्पण का भाव होता है। श्रद्धा में इतनी ताकत होती है कि वह श्रद्धेय के दिल में अपना स्थान बना लेता है। जहां सर्वात्मना समर्पण होता है वहां न कोई विकल्प होता है और न कोई तर्क। युवाचार्यप्रवर का अपनी आचार्य परम्परा के प्रति और अपने इष्ट के प्रति निर्विकल्प और तर्कातीत श्रद्धा-समर्पण है। जहां इस प्रकार का सर्वात्मना श्रद्धा-समर्पणभाव होता है, वहां अनेक उपलब्धियां हासिल हो सकती हैं।

युवाचार्य महाश्रमण प्राणवान हैं क्योंकि उनमें तप का बल है। तपस्या से व्यक्ति को कष्ट तो हो सकता है पर वह कष्ट परमसुख की ओर ले जाने वाला होता है। पूज्य गुरुदेव तुलसी के शब्दों में—'ध्यान करना तपस्या है तो

जनकल्याण के लिए चलना भी तपस्या है। मौन व्रत तपस्या है तो जनकल्याण के लिए बोलना भी तपस्या है। भूखे रहना तपस्या है तो संयम की परिधि में खाना भी तपस्या है।' पूज्य गुरुदेव तुलसी द्वारा प्ररूपित ये तप के प्रकार युवाचार्यवर में साक्षात हो रहे हैं। उनका प्रारंभ से ही ध्यान के प्रति आकर्षण रहा है। वे ध्यान करते हैं तो जनकल्याण के लिए लम्बी-लम्बी पदयात्राएं भी करते हैं। वे अनावश्यक न बोलने वाले मौनव्रत को हर समय जीवन्त बनाए रखते हैं तो जनहित के लिए कई घण्टों तक उपदेश-प्रवचन भी करते हैं। उपवास आदि तप करते हैं तो वे आहार भी करते हैं किन्तु अनासक्ति के साथ।

तप एक सुरक्षा कवच है। जो इसे पहन लेता है वह अनेक खतरों से बच जाता है। आचार्य महाश्रमण इस सुरक्षा कवच से स्वयं कवचित हैं और संघ की सुरक्षा के लिए तत्पर हैं। वे तपस्या को बहुत महत्त्व देते हैं। आचार्य महाप्रज्ञ ने उनको महातपस्वी कहा। प्रश्न हुआ कि युवाचार्य महाश्रमण महातपस्वी कैसे हुए? आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने समाधान देते हुए कहा—

- **महातपस्वी वह होता है, जो आहार का संयम करता है।**
- **महाश्रमण का आहार-संयम अनुत्तर है।**
- **महातपस्वी वह होता है, जिसमें इन्द्रिय-संयम होता है।**
- **महाश्रमण का इन्द्रिय-संयम अनुत्तर है।**
- **महातपस्वी वह होता है, जो श्रमशील होता है।**
- **महाश्रमण की श्रमशीलता अनुत्तर है।**
- **महातपस्वी वह होता है, जो सहनशील होता है।**
- **महाश्रमण की सहनशीलता अनुत्तर है।**

युवाचार्य महाश्रमण अपने प्राणवान कर्तृत्व से युग के केनवास पर अपनी मौलिक पहचान बना रहे हैं। यह संघ के लिए सात्त्विक गर्व और गौरव का विषय है।

दशम सूर्य अदृश्य

आचार्य महाप्रज्ञ के साथ युवाचार्य महाश्रमण ने सप्तवर्षीय अहिंसा-यात्रा की। इस यात्रा के दो उद्देश्य निश्चित किए गए—अहिंसक चेतना का जागरण और नैतिक मूल्यों का विकास। इस यात्रा की परिसंपन्नता के बाद पूज्यश्री ने जैनविश्वभारती में चातुर्मास और श्रीडूंगरगढ़ में मर्यादा-महोत्सव संपन्नकर सरदारशहर में पदार्पण किया। आचार्यप्रवर के ९१वें जन्मदिवस का यानी दशम दशक प्रवेश का भव्य समारोह समायोजित करने की तैयारियां चल रही थीं। गुरुदेव तुलसी की जन्म शताब्दी की योजना बन रही थी। आगम व अन्य साहित्य सृजन आदि का कार्य गतिमान था। सब कुछ सामान्य चल रहा था।

९ मई २०१० का प्रभात। परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने सदा की भांति अपनी दिनचर्या प्रारंभ की। अपराह्न में लगभग दो बजे युवाचार्यप्रवर कुछ सन्तों और मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी आदि साध्वियों को भिक्षु वाङ्मय की वाचना प्रदान कर रहे थे। अचानक मुनि रजनीशकुमारजी आए और कहा—'आचार्यश्री के ठीक नहीं है। आप एक बार अन्दर पधारें।' युवाचार्यश्री अविलम्ब कमरे में पधारे और देखा कि पूज्यप्रवर की स्थिति गड़बड़ा रही है। उन्होंने 'उवसग्गहरं पासं' आदि अनेक मंत्रों का पाठ किया किन्तु देखते ही देखते गुरुदेव की गर्दन नीचे झुक गई। संभवतः उसी समय उनका अवसान हो गया। उस समय लगभग दो बजकर १०-१२ मिनट हुए होंगे। फिर भी डॉक्टरों ने अपनी ओर से पुरुषार्थ किया किन्तु सारा उपचार निष्फल सिद्ध हुआ। लगभग दो बजकर पचपन मिनट पर डॉक्टरों ने युवाचार्यश्री के हाथों में डैथ-सर्टिफिकेट थमा दिया। मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी युवाचार्यप्रवर की ओर मुखातिब होकर बोले—'अब हम आपकी छत्रछाया में हैं, फिर युवाचार्यप्रवर ने भी भावविह्वल स्वर में घोषणा की—'परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ संसार में नहीं रहे।' इस घोषणा के साथ ही मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' ने युवाचार्य महाश्रमण को ग्यारहवें आचार्य के रूप में वर्धापित किया। आचार्य महाश्रमण ने उस भावुक पल में सर्वप्रथम धर्मसंघ के नाम एक संदेश दिया। वह इस प्रकार है—

अर्हम्

आज दिनांक ९/५/२०१० (द्वितीय वैशाख कृष्णा एकादशी) को चिकित्सकीय प्रमाण-पत्र के अनुसार अपराह्न लगभग २.५५ पर परमपूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञ का सरदारशहर में महाप्रयाण हो गया। तेरापंथ का दशम सूर्य अदृश्य हो गया। गुरुदेव का हम सब पर महान उपकार है। अब हम उनकी स्मृति कर सकते हैं, कृतज्ञता का भाव प्रकट कर सकते हैं।

पूज्य गुरुदेव ने मानवजाति, जैनशासन और तेरापंथ धर्मसंघ की महान सेवा की। मैं मेरे धर्मसंघ के सभी साधु-साध्वियों और समणश्रेणी की चित्तसमाधि के लिए प्रयत्न करता रहूंगा, यह मेरा संकल्प है। तेरापंथ धर्मसंघ के श्रावक समाज को भी मैं आध्यात्मिक पोषण प्रदान करते रहने का संकल्प करता हूं। इसके अतिरिक्त जैनशासन और मानवजाति की यथासंभव और यथोचित सेवा करने का संकल्प करता हूं।

इस कठिन परिस्थिति में हम सब मनोबल रखने का प्रयास करें और धर्मशासन की प्रभावना का प्रयास करते रहें।

सरदारशहर (राजस्थान) **आचार्य महाश्रमण**
९ मई २०१०

पदाभिषेक पर्व

२३ मई २०१० का सुप्रभात। गांधी विद्या मंदिर, सरदारशहर। आचार्यश्री महाश्रमण का पदाभिषेक पर्व वर्धापना समारोह। आचार्य महाश्रमण तेरापंथ संघ के पहले आचार्य हैं जिनका जन्म, दीक्षा और आचार्य पदाभिषेक एक ही शहर में हुआ। इंजीनियरिंग कॉलेज का विशाल एवं भव्य पण्डाल प्रायः जनाकीर्ण था। हजारों लोग बाहर भी खड़े थे। चारों ओर उत्साह और उल्लास मूर्तिमान हो रहा था। इस ऐतिहासिक कार्यक्रम के दौरान राजस्थान के चिकित्सा एवं स्वास्थ्य मंत्री श्री राजकुमार शर्मा ने अपने वक्तव्य में कहा—'आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ ने शांति, अहिंसा और करुणा का पाठ पढ़ाया, देशवासियों का मार्गदर्शन किया। आचार्य

महाश्रमण अब उनकी परम्परा को आगे बढ़ाकर देश और दुनिया का मार्ग-दर्शन करेंगे।'

सांसद श्री संतोष बागड़ोदिया ने श्रीमती सोनिया गांधी के प्रतिनिधि के रूप में अपनी मंगल भावनाएं व्यक्त की।

भाजपा के निवर्तमान अध्यक्ष श्री राजनाथ सिंह ने आचार्यवर के प्रति मंगलभावना व्यक्त करते हुए कहा—'भारत को ही नहीं, पूरे विश्व को जैनधर्म के तत्त्व और विचारधारा को अपनाने की जरूरत है। आतंकवाद और नक्सलवाद की समस्या के समाधान में जैन विचारधारा बहुत कारगर हो सकती है। ईश्वर आचार्यश्री महाश्रमण को इतनी शक्ति दे कि वे भारतीय संस्कृति की एकात्मकता को जन-जन तक पहुंचा सकें।'

पूर्व उपप्रधानमंत्री और वरिष्ठ भाजपा नेता श्री लालकृष्ण आडवानी ने अपनी मंगलभावनाएं व्यक्त करते हुए कहा—'आज का अवसर सामान्य नहीं, ऐतिहासिक है। केवल इसलिए नहीं कि तेरापंथ के महान आंदोलन का नेतृत्व आचार्य महाश्रमणजी करेंगे, बल्कि इसलिए भी कि तेरापंथ की महान् परम्पराओं को नए नेतृत्व के हाथों से सफल संचालन मिलेगा। अणुव्रत का आंदोलन अणु नहीं, बल्कि महान है। छोटे-छोटे व्रतों से ही महान साधना सफल बनेगी। यह आंदोलन केवल हिंसा को समाप्त करने के लिए नहीं, बल्कि समाज में फैले अनैतिक प्रदूषण को दूर करने का अभियान है। आचार्य महाश्रमण इस अभियान को गति प्रदान करेंगे।'

इस अवसर पर श्री आडवाणीजी ने आचार्यवर से दिल्ली यात्रा करने का भावपूर्ण अनुरोध किया।

मुख्य नियोजिका साध्वी विश्रुतविभाजी ने अपने वक्तव्य में कहा—'ऐसे व्यक्तित्व विरले होते हैं जो अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व के आधार पर नेतृत्व के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच जाते हैं। उन विरल व्यक्तित्वों में एक हैं आचार्य महाश्रमण। आचार्यवर में अध्यात्मनिष्ठा, आगमनिष्ठा, गणनिष्ठा, मर्यादानिष्ठा और गुरुनिष्ठा है। आचार्य महाश्रमण इंगियागार संपन्न हैं। आपने आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि को नई सृष्टि प्रदान की। आपके

व्यक्तित्व में गहराई भी है और ऊंचाई भी है।'

महाश्रमणी साध्वीप्रमुखाजी ने अपने प्रेरक अभिभाषण में कहा—'आचार्य भिक्षु ने अपने अनुभव और प्राचीन ज्ञान के बल पर तेरापंथ का इतिहास लिखा। उसमें ऐसी धाराएं अंकित की जो तेरापंथ का दस्तावेज बन गईं। एक विचार, एक आचार और एक समाचारी तेरापंथ की मौलिक विशेषता है। तेरापंथ धर्मसंघ में आचार्य ही सर्वोपरि होते हैं। तेरापंथ का अनुशासन थोपा हुआ नहीं, आत्मा से उपजा हुआ अनुशासन है। आचार्य भिक्षु का आत्मानुशासन अद्‌भुत था। उन्होंने संघ को आगे बढ़ाने वाले सूत्र प्रदान किए। जयाचार्य ने उन सूत्रों को विस्तार दिया। आचार्य तुलसी ने आचार्य भिक्षु और जयाचार्य के सूत्रों को आधुनिक रूप प्रदान किया।

आगम परम्परा की सुरक्षा, नीति नियामकता, शिक्षा का विकास, संस्कार-निर्माण और स्थिरीकरण तथा संघ व्यवस्था का सम्यक् संचालन—ये आचार्य के प्राथमिक कर्त्तव्य हैं। आचार्य का सर्वोपरि कार्य है अपने उत्तराधिकारी का मनोनयन। अब तक संघ में आठ युवाचार्य हो चुके हैं। महाश्रमणजी आठवें युवाचार्य हैं। आचार्यश्री महाश्रमणजी ने अपनी दक्षता और अर्हता से दो गुरुओं के दिल में अपना स्थान बनाया। आचार्यवर! आज आप संघ के सिरमौर बन गए हैं। विधिवत् आचार्य पद ग्रहण कर रहे हैं। आपको अपने शासनकाल में दोनों आचार्यों के कार्यों को आगे बढ़ाते हुए आगे बढ़ना है।'

साध्वीप्रमुखाजी ने अपने भाषण की परिसंपन्नता के साथ पदाभिषेक विधि के संयोजन का दायित्व निभाते हुए आचार्यवर से पट्टासीन होने का अनुरोध करते हुए कहा—

आहिस्ते से उठो आर्यवर!, पट्टासीन बनो मंगल पल,
सविनय बद्धांजलि शुभशंसा, महाप्रज्ञ आसन हो अविचल।।

शासनश्री मुनि बालचंदजी आदि वरिष्ठ संतों ने आचार्यवर की अगवानी की। आचार्यवर कुर्सी से खड़े हुए। वरिष्ठ मुनिजनों द्वारा पट्ट पर विराजने के अनुरोध का सम्मान करते हुए धीर गंभीर कदमों से चलकर

आचार्यवर पट्ट के परिपार्श्व में आए। जय-जय की ध्वनि और मंगल घोषों के मध्य आचार्यवर पट्ट पर आसीन हुए।

पट्टासीन होने के पश्चात साधु-साध्वियों ने मंगल मंत्रोच्चार किया।

महाश्रमणीजी ने वयोवृद्ध मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' से दायित्व की प्रतीक पंच स्वस्तिकमय पछेवड़ी ओढ़ाने का अनुरोध किया। मुनिश्री सुमेरमलजी 'सुदर्शन' ने उस मंगलमय क्षण की वर्धापना करते हुए चतुर्विध धर्मसंध की ओर से अमल-धवल पछेवड़ी आचार्यवर को ओढ़ाकर आचार्य पदाभिषेक की महत्त्वपूर्ण विधि संपादित की। इस क्षण को निहारने के लिए हजारों नेत्र अपलक बन गए। जय-जय की हर्षध्वनि और तुमुल शंखनाद से धरती और आकाश को दर्शकों ने गुंजा दिया। जनता का हर्ष, उल्लास और उत्साह अमाप्य था।

आचार्यवर ने अत्यन्त सम्मान और विनय भाव के साथ इस दायित्व की प्रतीक पछेवड़ी को स्वीकार किया। साधु-साध्वियों ने 'जय जय नंदा जय जय भद्दा' गीत गाकर इस मंगल अभिषेक का वर्धापन किया।

आचार्यश्री महाश्रमण ने दायित्व की इस चादर को स्वीकार करते हुए संकल्प ग्रहण किए। आचार्यवर ने कहा—'मैं कल्पना कर रहा हूं जैसे गुरुदेव श्री महाप्रज्ञ मुझे संकल्प ग्रहण करवा रहे हैं और मैं संकल्प ग्रहण कर रहा हूं।' इस कथन के साथ आचार्यवर ने संकल्पों की शब्दावली का उच्चारण किया।

आचार्यप्रवर द्वारा व्यक्त संकल्प

१. मैं तेरापंथ की परम्परा, मर्यादा, आचार-विचार और समाचारी की एकता को अक्षुण्ण रखने का पूरा प्रयास करूंगा।

२. मैं तेरापंथ धर्मसंघ के दायित्व का पूर्ण निष्ठा के साथ निर्वाह करूंगा।

३. मैं तेरापंथ के व्यापक दृष्टिकोण एवं कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करूंगा।

चतुर्विध धर्मसंघ द्वारा संकल्प

जैनशासन के महान सूर्य, तेरापंथ धर्मसंघ के नवोदित आचार्यश्री महाश्रमण!

हम सब पदाभिषेक के पावन अवसर पर सर्वात्मना समर्पण के साथ आपके मंगलमय नेतृत्व को स्वीकार करते हैं और आपको विश्वास दिलाते हैं कि 'अणाए मामगं धम्मं' के अनुसार आपके हर आदेश-निर्देश को स्वीकार करेंगे और प्राणप्रण से उसका पालन करने के लिए जागरूक रहेंगे।

केन्द्रीय संस्थाओं के पदाधिकारियों द्वारा स्वीकृत संकल्प

भंते! आप हम सबके आध्यात्मिक अनुशास्ता हैं। पदाभिषेक के पावन अवसर पर हम संकल्प करते हैं कि तेरापंथ एवं संघपति के गौरव को बहुमान देते हुए आपके हर आदेश-निर्देश का आत्मसाक्षी से पालन करेंगे।

धर्मसंघ के नाम संबोधन

पदाभिषेक के इस अवसर पर परम श्रद्धेय आचार्यश्री महाश्रमण द्वारा प्रदत्त धर्मसंघ के नाम संबोधन इस प्रकार है—

महामहिम तेरापंथ धर्मसंघ!

परमात्मा भगवान महावीर एक लोकोत्तम पुरुष थे। वे स्वयं वीतराग थे और दुनिया को वीतरागता का पथदर्शन देने वाले महापुरुष थे।

परम प्रभु महावीर के वीतराग दर्शन पर आधारित है जैनशासन। उसी का एक अंग है तेरापंथ धर्मसंघ। उसके प्रणेता हैं परम पूज्य श्रद्धेय आचार्य भिक्षु। उन्होंने तेरापंथ को विचार, आचार, मर्यादा और व्यवस्था के विधान से सुसज्जित बनाया।

उनकी उत्तराधिकार परम्परा में परम पूज्य आचार्य भारमलजी, आचार्य रायचन्दजी, आचार्य जीतमलजी, आचार्य मघराजजी, आचार्य माणकलालजी, आचार्य डालचन्दजी और आचार्य कालूरामजी हुए। मैं उनका प्रत्यक्षदर्शी नहीं हूं।

पूज्य कालूगणी के उत्तराधिकारी आचार्य तुलसी और उनके

उत्तराधिकारी आचार्य महाप्रज्ञजी हुए। इन दोनों धर्माचार्यों, धर्मगुरुओं का वरद सान्निध्य मुझे प्राप्त हुआ। गुरुद्वय से मुझे महत्त्वपूर्ण पथदर्शन प्राप्त हुआ। मेरे जीवन के निर्माण में इन दोनों महान गुरुओं का महनीय योगदान है। इन दोनों धर्मगुरुओं, मेरे आराध्यों के प्रति मैं श्रद्धाप्रणत हूं। गुरुदेव तुलसी ने मुझे धर्मसंघ की अंतरंग व्यवस्था से जोड़ा और पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने तो मुझे तेरापंथ धर्मसंघ का उत्तराधिकार भी सौंप दिया। उन्होंने अपने पवित्र करकमलों से तेरापंथ शासन के उत्तराधिकार की चद्दर मुझे गंगाशहर में ओढ़ाई, मुझे संघ का युवाचार्य बना दिया।

परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ के महाप्रयाण के साथ धर्मसंघ का सर्वोच्च नेतृत्व स्वाभाविक रूप से मेरे में समाविष्ट हो गया। आज धर्मसंघ ने धवल चद्दर ओढ़ाकर औपचारिक रूप में मुझे तेरापंथ के ग्यारहवें आचार्य के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। भिक्षु शासन की इस अमल चद्दर का, जो दायित्व की प्रतिबोधक है, अपने पवित्र कार्यों के द्वारा पूर्ण सम्मान रखना मेरा परम कर्त्तव्य होगा।

पूर्ववर्ती दस आचार्यों का—आचार्य भिक्षु से लेकर आचार्य महाप्रज्ञजी तक दसों आचार्यों का परम प्रसाद मुझे हमेशा प्राप्त होता रहे।

भि भा रा ज म मा डा का तु, महाप्रज्ञ गुरुदशकं पातु।

मैं चतुर्विध धर्मसंघ की समर्पित और आत्मीय भाव से आध्यात्मिक सेवा करता रहूं—यह मेरी स्वयं के प्रति मंगलकामना है।

पूरा धर्मसंघ सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र की आराधना में वर्धमान रहे—यह मेरी धर्मसंघ के प्रति मंगलकामना है।

इस गरिमापूर्ण अवसर पर मैं कुछ बात को आगे बढ़ाऊं। मेरे मन में भावना हो रही है कि मैं इस बार यहां विराजमान जो रत्नाधिक मुनि हैं, मैं उनकी चरण वंदना करूं।

हमारे रत्नाधिक मुनिप्रवर हैं, वे कष्ट न हो तो एक बार यहां पधारें। मैं उनकी चरण वंदना करके विनय की परम्परा का निर्वाह करना चाहूंगा। (रत्नाधिक मुनियों को चरण वंदना) संभवतः यहां अभी सरदारशहर में मेरे से

रत्नाधिक १२ मुनिप्रवर हैं, ११ को मैंने चरण वंदना कर ली। मुनिश्री दुलहराजजी शायद यहां नहीं पधार सके हैं तो मैं यहीं से खड़ा-खड़ा उनकी भी चरण वंदना कर रहा हूं।

इधर हमारे साध्वीप्रमुखाजी हैं, जिनमें सभी साध्वियां मानो समाविष्ट हैं। वे सबकी प्रतिनिधि हैं। मैं उनका अभिवादन करता हूं।

इसके साथ पूरे धर्मसंघ में जितने भी मेरे से रत्नाधिक संत हैं, संभवतः १२ यहां और ३२ संत बाहर हैं। उन ३२ रत्नाधिक मुनिवरों को मैं यहीं से चरण वंदना कर रहा हूं।

इस गरिमापूर्ण अवसर पर मैं श्रद्धेय मुनिश्री सुमेरमलजी स्वामी 'लाडनूं' के प्रति भी वंदना और कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। उन्होंने गुरुदेव श्री तुलसी की आज्ञा से मुझे मुनि दीक्षा प्रदान की, शिक्षा और संस्कार दिए।

हमारे धर्मसंघ में साध्वीप्रमुखा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुझे महासती कनकप्रभाजी साध्वीप्रमुखा और महाश्रमणी के रूप में प्राप्त हैं। इन्होंने गुरुदेव श्री तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ के शासनकाल में संघीय व्यवस्था के क्षेत्र में अपनी सेवाएं दी हैं और अब मुझे इनकी सेवाएं प्राप्त हैं। मैं इनकी सेवाएं प्राप्त करता रहूं—यह मेरी इनके प्रति मंगलकामना है और साध्वीप्रमुखाजी खूब अच्छे ढंग से मेरा सहयोग करती रहेंगी, काम आगे बढ़ाती रहेंगी, यह मेरी अंतर्मन की कामना है।

परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने साध्वी विश्रुतविभाजी को मुख्य नियोजिका के रूप में नियुक्त किया। इन्होंने आचार्यश्री महाप्रज्ञ के आचार्यकाल में व्यवस्था के क्षेत्र में अपनी सेवाएं दी। अब मुझे इनकी सेवाएं प्राप्त हैं। मैं कामना करूंगा—इनकी भी सेवाएं मुझे अच्छे ढंग से व्यवस्था के क्षेत्र में प्राप्त होती रहें। ये अच्छे ढंग से अपना दायित्व निभाती रहें। धर्मसंघ की इन दोनों विभूतियों—साध्वीप्रमुखाजी और मुख्य नियोजिकाजी का सहयोग मेरे लिए श्रेयस्कर बना रहे।

सभी साधु-साध्वियों और समणश्रेणी का योग मेरे लिए मंगलमय बना रहे। श्रावक-श्राविका समाज की उपलब्धि मेरे लिए श्रेयस्कर बनी रहे।

इस अवसर पर मैं अपने संसारपक्षीय पिता स्वर्गीय झूमरमलजी दूगड़ और संसारपक्षीया मां स्वर्गीया नेमादेवी की भी स्मृति करता हूं। उनका भी मेरे पर उपकार है।

तेरापंथ धर्मसंघ के दायित्व को निभाते हुए मैं यथासंभव यथोचित रूप में जैनशासन और मानवजाति की सेवा में अपनी शक्ति का नियोजन करता रहूंगा—यह मेरी भावना है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री तुलसी और परम पूज्य आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा प्रारंभ और पोषित गतिविधियों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की स्थिति के अनुसार विवेचन पूर्वक यथौचित्य मैं संचालित करने का प्रयत्न करता रहूंगा।

मैं इस अवसर पर जो धर्मसंघ के लिए उल्लास का अवसर है, मेरे लिए दायित्वबोध का अवसर है, मैं एक परम्परा को निभाते हुए धर्मसंघ के सभी साधु-साध्वियों को एक सौ एक कल्याणक बक्शीश करता हूं और औषध आदि के लिए जो किया जाने वाला विगय वर्जन है, उसकी भी तीन मास के लिए बक्शीश करता हूं।

इसके साथ मैं साधुओं के लिए यह व्यवस्था दे रहा हूं कि गुरुकुलवास में जो संत हैं, वे साध्वियों से सिलाई-रंगाई एक वर्ष तक मुक्त रूप से करवा सकेंगे।

सभी साध्वियों को यह कहना चाहूंगा कि साध्वियों के लिए जो रजोहरण और पूंजनी-निर्माण की व्यवस्था है, एक वर्ष के लिए उन्हें इस व्यवस्था से मुक्त रहने की बक्शीश करता हूं।

इस प्रसंग के साथ एक बात मैं और कहना चाहता हूं—परम पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री महाप्रज्ञ ने केलवा और जसोल के लिए चातुर्मासों की घोषणा की थी, टापरा और आमेट के लिए मर्यादा महोत्सव की घोषणा की थी परन्तु कोई ऐसी स्थिति बनी कि उनके चातुर्मास और मर्यादा महोत्सव नहीं हो सके। मैं आज इतना सा चिंतन कर सका हूं, यह निर्णय कर पाया हूं कि भविष्य में जब भी अनुकूलता बनेगी, संवत् और सन् से बिना बंधे हुए केलवा और जसोल में एक-एक चातुर्मास करने का मेरा भाव है। इसके

साथ बिना सन् संवत् से बंधे हुए टापरा और आमेट में एक-एक मर्यादा महोत्सव करने का भाव है।

हमारे सामने परम पूज्य गुरुदेव श्री तुलसी की जन्मशताब्दी का भी अवसर है। परम पूज्य गुरुदेव महाप्रज्ञजी उसकी योजना बनाने में लगे थे परन्तु वह काम बीच में रह गया। मैं उस पर ध्यान देने का प्रयास करूंगा। यथासंभव उसकी योजना बनाऊंगा और जैसा आडवाणीजी ने अभी कहा था कि दिल्ली आईए, मैं इतना सा आज कहना चाहूंगा कि गुरुदेव तुलसी का जन्म शताब्दी वर्ष सन् २०१३-१४ में आ रहा है, उसके संदर्भ में जब भी उपयुक्त होगा, एक बार मेरा दिल्ली जाने का भाव है।

हमारा धर्मसंघ स्वस्थ रहे और हम अपने चरित्र की सम्यक् आराधना करते हुए यथासंभव जनता की भी सेवा करते रहें।

आश्वस्त है धर्मसंघ

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—मोक्ष-मार्ग के चतुरंग धर्म की साधना में संलीन आचार्य महाश्रमण के कुशल नेतृत्व में पवित्रता, तेजस्विता गंभीरता का ग्राफ सदा ऊंचा रहे, यही काम्य है।

सचमुच, पूरा धर्मसंघ आचार्य महाश्रमण जैसा सर्वगुण संपन्न कुशल गणनायक पाकर आश्वस्त है, विश्वस्त है।

आचार्य महाश्रमण

जन्म :	वि.सं. २०१९, वैशाख शुक्ला नवमी (१३ मई १९६२) सरदारशहर
जन्म नाम :	मोहनलाल दूगड़
पिता :	श्री झूमरमलजी दूगड़
माता :	श्रीमती नेमादेवी दूगड़
दीक्षा :	वि.सं. २०३१ वैशाख शुक्ला चतुर्दशी (५ मई १९७४) सरदारशहर (आचार्य तुलसी की अनुज्ञा से मुनि सुमेरमलजी 'लाडनूं' द्वारा)
अन्तरंग सहयोगी :	वि.सं. २०४२, माघ शुक्ला सप्तमी (१६ फरवरी १९८६) उदयपुर
साझपति :	वि.सं. २०४३, वैशाख शुक्ला चतुर्थी (१४ मई १९८६) ब्यावर
महाश्रमण पद :	वि.सं. २०४६, भाद्रव शुक्ला नवमी (९ सितम्बर १९८९) लाडनूं
युवाचार्य पद :	वि.सं. २०५४, भाद्रव शुक्ला द्वादशी (१४ सितम्बर १९९७) गंगाशहर
आचार्य पदाभिषेक :	वि.सं. २०६७, द्वितीय वैशाख शुक्ला दशमी (२३ मई २०१०) सरदारशहर
प्रकाशित पुस्तकें :	आओ हम जीना सीखें, दुःख मुक्ति का मार्ग, क्या कहता है जैन वाङ्मय, संवाद भगवान से (भाग-१,२), शिक्षा सुधा, शेमुषी, सपर्या, धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, महात्मा महाप्रज्ञ, आदि।

आचार्य महाश्रमण

- एक ऐसा **परिव्राजक** जो 20,000 कि.मी. से ज्यादा चलने के बाद भी उत्साह के साथ मानवता का शंखनाद करता हुआ गतिमान है।

- एक ऐसा **साधक** जो भारतीय ऋषि परम्परा को पुष्ट रखता हुआ साधनारत है।

- एक ऐसा **प्रवचनकार** जिसके उपदेश को हर जाति, वर्ग, क्षेत्र और सम्प्रदाय की जनता आदर के साथ स्वीकार करती है।

- एक ऐसा **समाज सुधारक** जो सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों और रूढ़ धार्मिक कर्मकाण्डों पर तीखे प्रहार करता है।

- एक ऐसा **साहित्यकार** जो शास्त्रों के सम्पादन और नवीन कृतियों के सृजन के द्वारा साहित्य जगत को समृद्ध बना रहा है।

- एक ऐसा **अनुशास्ता** जिसके कुशल आध्यात्मिक नेतृत्व में लाखों लोग समाजोत्थान के लिए समर्पित हैं।